नीर भर आये बदरा

उमाशंकर

नीर भर आये बदरा

उमाशंकर

भारतीय ग्रन्थ निकेतन
दिल्ली–६

सूची-पत्रक

उमाशंकर, १९२८—

नीर भर आये बदरा.

दिल्ली, भारतीय ग्रन्थ निकेतन, १९६२.

१९९ पृ. १९ सेंमी.

१. माख्या.

891.433 0152,3N28 वि. हि. ४.

प्रकाशक : © भारतीय ग्रन्थ निकेतन,
१३३ लाजपतराय मार्केट,
दिल्ली-६

आवरण शिल्पी : पाल बन्धु

प्रथम संस्करण : नवम्बर १९६२

मूल्य : ४·००

मुद्रक : हरि हर प्रेस,
चावड़ी बाजार, दिल्ली

Nīr bhar āyē badarā, by Umāśankar. Rs. 4·00

१

बनारस से लगभग तीन कोस और पूरब जाने पर परसाँ नामक एक गाँव था। इस गाँव में भुंईहारों और अहीरों के घर अधिक थे। ब्राह्मण, कायस्थ, नाई, धोबी, चमार और लुहार थोड़े थे। उत्तर प्रदेश के पूर्वी इलाके में ठाकुरों को भुंईहार कहा जाता है और हर भुंईहार 'बाबू साहब' के नाम से पुकारा जाता है। उसकी यह प्रतिष्ठा उसकी जाति के कारण है। निर्धन से निर्धन भुंईहार भी 'बाबू साहब' कह कर ही सम्बोधित होगा। फलतः परसाँ के सभी भुंईहार बाबू साहब थे।

फागुन का महीना आ गया था। प्रकृति ने जड़-चेतन के भीतर गुदगुदी उत्पन्न कर दी थी। एक विशेष प्रकार का आकर्षण फैल गया था। दिन की गर्मी भली लगती थी और रात की चाँदनी टीस उत्पन्न करती थी। अकुलाहट की वृद्धि कर रही थी युवकों और युवतियों के रोम-रोम में। होली समीप आती जा रही थी।

किसानों की सम्पत्ति खेतों से उठकर खलिहानों में आ गई थी। और अगर कुछ शेष थी तो वह बहुत थोड़ी थी जो बस्ती के आस-पास बिखरी हुई सुरक्षित थी। इन खेतों की बोवाई बाद में हुई थी, इस कारण इनके कटने में अभी विलम्ब था। दूर तक फैले सीवान में सूखी मिट्टी के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। हाँ, यत्र-तत्र अरहर के खेत अवश्य लहलहा रहे थे जो अब भी सूरज की किरणों को चुनौती देने में समर्थ थे।

एड़ी चोटी का पसीना एक करके जिस फल की किसान कामना करता है, यदि अब वह मिलने वाला हो तो इससे बढ़कर उसके लिये

दूसरी प्रसन्नता कौन हो सकती थी ? उनके लिए तो यही सर्वस्व था। इसी में उनके जीवन का सम्पूर्ण आनन्द निहित था। खलिहान में फसल के ऊँचे-ऊँचे ढेर, वर्ष भर के परिश्रम के उपरान्त कुछ आराम, रात में भुरभुराती हुई फगुनहटा की मस्ती और सोने में सुगन्ध उत्पन्न करने वाला होली का त्यौहार, अगर उनकी दुनिया को अब भी रंगीन न बनाता तो कब बनाता ?

रात में भोजनोपरान्त चौपालों, खलिहानों, मन्दिरों और बागों में फाग होने लगी थी। ढोलक की ताल पर सुनाई पड़ता—

सरजू तट राम खेलें होरी,
सरजू तट ;
भर भर पिचुकारी रंग हैं डारत
अबिर गुलाल भरें भोरी;
सरजू तट ॥

और कहीं से यह आवाज़ आ रही थी—

भौजी लगावें गुलाल बिच दुपहरिया में।
हम के दिखावें सिंगार बिच दुपहरिया में ॥

और सरजूराय के मन्दिर के समीप वाले खलिहान में धीरज गा रहा था—

होली में बाबा देवर लागें होली में।
वह भोले बलम से सुघर लागें होली में ॥

इस प्रकार रात के बारह और एक-एक बजे तक नाना प्रकार के फागों से परसाँ गाँव का वातावरण रसमय होने लगा था।

होली आ गई। परसों जलने वाली थी। रस बढ़ गया था। मन खिल उठा था। मस्ती फैल गई थी। छोटे-बड़े बूढ़े-जवान, स्त्री-पुरुष सभी एक नये प्रकार के आनन्द का अनुभव करने लगे थे। हर तरफ प्रसन्नता बिखर गई थी। देवर-भाभी वाला मज़ाक बढ़ गया था। जब जैसा अवसर मिला रंग या गोबर डाल कर होली की मस्ती का परिचय

दे दिया गया। रसिकों के नये-नये शगूफे शुरू हो गये थे। छेड़-छाड़ बढ़ गई थी। प्रेमियों की दुनियाँ में विकलता छा गई थी। लोगों की आँखें बचाकर मिलने की प्रवृत्ति बढ़ गई थी। घरों में पति-पत्नियों की ठिठोलियाँ, रंग का डारना, गुलाल मलना और मलाना आरम्भ हो गया था। तात्पर्य यह कि खुशी चारों ओर छा गई थी। लोग ईर्षा, द्वेष भूल गये थे। दुश्मन दोस्त बन गये थे।

होली की मस्ती इतने तक ही सीमित नहीं थी। रात में लौंडे का नाच भी होने लगा था और टोले-टोले में होने लगा था। खाना खाने के बाद प्रत्येक टोले के लोग मशालों की रोशनी में लौंडे को नचाते हुए गाँव में निकलते और प्रत्येक व्यक्ति के दरवाजे पर नाच दिखलाते हुए लौट आते। कभी-कभी दो दलों में मुठभेड़ हो जाती और फिर एक दूसरे को परास्त करने में किसी तरह की कसर न छोड़ते। धीरज वाले टोले में भी लौंडा आया था। पिछले वर्ष का बदला इस वर्ष निकालना था। उसे गाँव ऊपर सिद्ध करना था। बली चनरमा उर्फ मिरदंगी बड़े खार खाये बैठे थे। क्यों न खाते ? उनके जैसा ढोलक बजाने वाला कोई था ? बेचारे ने पिछले वर्ष ऐड़ी-चोटी का पसीना एक कर दिया था परन्तु फिर भी सब बेकार रहा। उनका लौंडा ही दो कौड़ी का था। मिरदंगी विष का घूंट पीकर रह गये थे। उन्होंने होली में ढोलक न बजाने की प्रतिज्ञा कर ली थी परन्तु इस बार लौंडरिया के आने पर और संगी-साथियों के आग्रह पर उन्होंने हामी भरी थी।

आज धीरज के टोले के नाच का श्रीगणेश था। जल्दी-जल्दी खाना खाकर लोग सरजूराय के दरवाजे पर इकट्ठे होने लगे। उधर कमरे में मुन्शी फुलेसरलाल लौंडे के मेकअप में जुटे हुये थे। उन्होंने यह हुनर कलकत्ते में सीखा था जब वे पुलिस के सिपाही थे। बाहर मैदान में मिरदंगी ढोलक की कचूमर निकाल रहे थे। गोल-मटोल शरीर पर बड़ी बड़ी भूरी मूंछें तथा भूरी आँखें और उन भूरी आँखों में विजया की गुलाबी एवं होली की मस्ती—इस समय उन्हें किसी और दुनिया में

उड़ाये लिए जा रही थी। बार-बार ढोलक चढ़ाते और बार-बार उतार देते। बगल में बैठे हुए लड़के उनकी दिल्लगी उड़ाते और हंसते-हंसते लोटपोट हो जाते। मिरदंगी भी हंसते रहते। वह भी तो समझ रहे थे कि उन्हीं जैसी उन लड़कों में भी मस्ती है।

नाच खड़ा हुआ। मशालें जला दी गईं। मिरदंगी के कमर में ढोलक बाँध दी गई। सरजूराय को अन्दर से बुलाया गया। वह बाहर आये। उन्होंने मुसकराते हुए मिरदंगी की ओर देखा 'मिरदंगी।' वह बोले।

'हाँ चाचा।' मिरदंगी झूमते हुये आगे आये।

'मामला ठीक है न ?'

'बहुत ठीक है चाचा। आज कुछ गहरी कर ली है। कौन ठिकाना, कहीं भिड़न्त हो ही जाय। इस बार बदला निकालना है।'

सरजूराय हंसने लगे, 'चलो एक कोई भजन सुनवाओ।'

लौंजरिया गाने लगा—

कान्ह मोसे खेलो न होरी।
करूँ विनती कर जोरी॥
मैं तो चली जल भरन साँवरे,
सासु ननद की चोरी,
सारी चुनर मोरी रंग न भिजाओ,
इतनी अरज है मोरी॥ कान्ह मोसे॥
....
....

भजन समाप्त होने पर सरजूराय ने एक अठन्नी पुरस्कार स्वरूप दिया और जाने की अनुमति दी। सब उछलते हुये मुड़ चले। इस टोले में सरजूराय ही सबसे बड़े थे और खेती-पाती भी अधिक थी। ये जाति के भुंईहार थे।

नाच सबके द्वारों से होता हुआ बाहर निकल कर दूसरे टोले के

लिए बढ़ा ही था कि सिवनन्दनलाल के बाग से आता हुआ दूसरे टोले वाला नाच दिखाई पड़ गया। मिरदंगी चिल्ला उठे—'हो गई भिड़न्त'। फिर उन्होंने लौंजरिया से कहा, 'नाक न कटने पाये उस्ताद। बड़ी हाँका-हांकी की बात है।'

'घबड़ाओ नहीं मिरदंगी। मेरा नाम लौंजरिया है, लौंजरिया। देखना उस लौंडे का कैसा कचूमर निकालता हूँ। बिदेसिया ही है न ?'

'हाँ ? बिदेसिया है।'

'तब बेफिक्र चलो।'

दोनों दल समीप आ गए। तत्काल प्रबन्धकों ने एक घेरा बनाकर बीच में जगह कर ली। नचनियाँ नाचने लगे। अपने-अपने करिश्मा दिखलाने लगे। दोनों ओर के ढोलकिया गर्दन हिला-हिलाकर अपनी ढोलकों पर पिल पड़े। विशेषकर मिरदंगी तो मालूम पड़ रहे थे कि ढोलक के साथ उड़ जायेंगे। समर्थक अपनी-अपनी कह रहे थे। लगभग पौन घण्टे तक दोनों नाचने वालों ने बड़ी भयंकरता से नाचा। किसकी जीत होगी और किसकी हार—कहना कठिन था। परन्तु अगले पन्द्रह मिनट बाद ही बिदेसिया में शिथिलता के चिह्न दिखलाई पड़ने लगे। मिरदंगी उछले—'जीते रहो बाबू ? पड़ाव फतह है।' और वह ढोलक पर मशीन की तरह उङ्गलियों को नचाते हुए लौंजरिया का उत्साह बढ़ाने लगे।

बिदेसिया के दल वाले चिन्तित हुए। बाजी हारती हुई नजर आई। दो-एक के बीच कानाफूसी हुई और तुरन्त एक व्यक्ति कबीर कहता हुआ बीच में कूद पड़ा।

अररररर सुन ले भईया मोर कबीर—
भोला के संग गौरा नाचें गौरा के संग भोला,
मस्ती में है आज सिवसंकर छाने भंग का गोला,
भूत पिसाच सभी नाचे हैं नाचे उनका कोला,
भूल गए सब अपनी दुनिया ऐसा रंग है घोला,

रंगी हुई कैलासपुरी है रंगा है सबका चोला,
सबके मुंह से निकले बम दम, भोला, भोला, भोला,
बम बम भोला, बम बम भोला, बम बम भोला।
बम बम भोला, बम बम भोला, बम बम भोला ।।

यह चतुराई विदेसिया के सुसताने के अभिप्राय से की गई थी और साथ ही यह भी सोचा गया था कि सम्भव है जोगीड़ा के जवाब-सवाल में उधर वाले इतने बेजोड़ साबित न हों परन्तु उनका अनुमान गलत निकला। कबीर कहने वाले ने कबीर समाप्त ही किया था कि अचानक धीरज उछल कर सामने आया और उसी ढब से उसने जवाब दिया—

गोरखपुर में गोरख बाबा सिहजटी कहलावें,
पाँच कोस पयकरमा करके द्वारे घंट बजावें।
रे बर देख, देख, हा, हा,
जोगीड़ा सारारारा, सारारारा, सारारारा,
ओ अलबेली,
जोगीड़ा सारारारा, सारारारा, सारारारा,
जोगीड़ा सारारारा, सारारारा, सारारारा।

मिरदंगी का हृदय बल्लियों उछल पड़ा। उसने भी धीरज के स्वर में अपनी ढोलक का स्वर मिलाते हुए बजाया—

धि धि काँवा, धि धि काँवा, धि धि काँवा।
धि धि काँवा, धि धि काँवा, धि धि काँवा।

समर्थकों का कोलाहल था, 'जुग जुग जियो धीरज महाराज, जुग जुग जियो।' सब हाथ उठा-उठाकर उछलने लगे थे।

विरोधी अभी विचलित नहीं हुआ था। उसने दूसरा वार किया—

गोरी के नकबुल्ली सोभे, सोभे चुनरी पीली,
तिरछे नयन से बान चलाके देत करेजवा छीली।
चली जा,
चली जा, सारारारा, सारारारा, सारारारा,

ओ अलबेली,
चली जा, सारारारा, सारारारा, सारारारा।

पुनः बड़े ज़ोर का हल्ला हुआ। अंगोछे उछाल-उछाल कर 'वाह वाह' के नारे लगने लगे। विदेसिया कमर मटका कर तेज़ी से पूरे घेरे का चक्कर लगाता हुआ पैरों पर लहर खाने लगा। उत्तर की प्रतीक्षा होने लगी।

धीरज तैयार था। उसने उसी लहजे में जवाब दिया—

गाल गुलाबी, आँख शराबी चाल बड़ी मस्तानी,
तनिक संभलकर निकलो बाहर होली है अब जानी।
चली जा,
चली जा, सारारारा, सारारारा, सारारारा,
ओ अलबेली,
चली जा, सारारारा, सारारारा, सारारारा।

मिरदंगी बजाते रहे—

धि धि काँवा, धि धि काँवा, धि धि काँवा,
धि धि काँवा, धि धि काँवा, धि धि काँवा,
धि धि काँवा, धि धि काँवा, धि धि काँवा।

लौंजरिया बिजली की भाँति चक्कर लगाने लगा। धीरज का जवाब मिलना मुश्किल हो गया। विरोधी दल आपस में एक दूसरे का मुंह देखने लगा। मिरदंगी ने बाजी मार ली। धीरज का जवाब तत्काल न मिल सका। सब 'हो हो' करते हुए आगे बढ़ गये। निबटारा हो गया। मिरदंगी की नाक रह गई।

कई दरवाजों से होता हुआ धीरज वाला दल एक संकरी गली में आया। अंधेरा अधिक था। लोग आगे-पीछे हो गए। मशाल वाले आगे निकल चुके थे। धक्कम धक्का से बचने के लिए धीरज एक किनारे खड़ा हो गया। सब निकल गए। अब वह भी बढ़ा। अभी दस कदम ही चल पाया होगा कि किसी ने पीछे से गोबर फेंक कर मारा। वह

सकपका गया। मुड़ कर देखा तो रूनिया खड़ी अंगूठा बिरा रही थी, 'होली है पंडित पोंगा होली। क्या समझे ?'

'बताता हूँ......' धीरज ने दौड़कर पकड़ना चाहा।

वह झट से भाग कर किसी घर में घुस गई।

२

धीरज के आगे-पीछे कोई न था। परसाँ उसके बड़े भाई की ससुराल थी। आज से दस वर्ष पूर्व हैजे की बीमारी में उसके भाई और भौजाई दोनों की मृत्यु हो गई थी। तब से धीरज अपने भाई की ससुराल में आकर रहने लगा था। धीरज के श्वसुर रामगुलाम तिवारी साधारण स्थिति के व्यक्ति थे। पंडिताई के अतिरिक्त थोड़ी बहुत खेती-पाती भी होती थी और अब यह सब करने धरने वाला धीरज ही था। रामगुलाम पंडित के केवल एक ही लड़की थी जो धीरज के भाई को ब्याही थी। उसकी असमय मृत्यु और उस मृत्यु से उत्पन्न व्यथा के निवारणार्थ ही रामगुलाम ने धीरज को अपने यहाँ रख लिया था और उसे पाल-पोस कर जवान भी बना दिया था। रामगुलाम और उसकी पत्नी के बुढ़ापे के लिये धीरज सहारा बन गया था।

रामगुलाम द्वारा लालन-पालन होने के कारण थोड़ा समय धीरज को विद्यादेवी की आराधना में भी लगाना पड़ा था। फलस्वरूप उसे सत्यनारायण की कथा संस्कृत में कंठस्थ हो गई थी। उपनयन संस्कार और पाणिग्रहण संस्कार के अवसरों पर जिन श्लोकों का उच्चारण तथा जिस विधि से समस्त कार्यक्रमों को सुचारु-रूप से किया जाता है वे धीरज को मालूम थे। साथ ही राजनीतिक मनोवृत्ति होने के कारण उसे इधर-उधर से पुस्तकें और अखबार भी जब तब पढ़ने को मिल

जाया करते थे। इस प्रकार धीरे-धीरे धीरज का विकास ही हो रहा था, ह्रास नहीं।

धीरज देखने-सुनने में भी अच्छा लगता था। शरीर हृष्ट-पुष्ट था। तरुणाई की मादकता भी थी परन्तु विशेषता यह थी कि उसमें छेड़-छाड़ की आदत नहीं थी। रिश्ते से परसाँ की सारी लड़कियाँ उसकी साली होती थीं और अधिकतर उन लड़कियों द्वारा वह छेड़ा भी जाता था किन्तु धीरज हंस कर टाल देने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर पाता था। क्यों नहीं कर पाता था इसका क्या कारण बताया जाय ?

पर इधर कुछ महीनों से रूनियाँ उसके विचारों में बसने लगी थी। रूनियाँ की आमो की फाँकी जैसी लम्बी-लम्बी आँखें, सेब की भाँति लाल-लाल गाल, गठे और उभरे शरीर के एक-एक अंग, ऐंठ कर चलने की मस्तानी चाल, सदैव हँसता हुआ चेहरा, निडर होकर सबसे बातें करने की आदत और इन सब के ऊपर केवल अट्ठारह वर्ष की आयु धीरज को जाल में फँसाने लगी थी। वह बड़ी उलझन में पड़ गया था।

यद्यपि रूनियाँ का विवाह हो चुका था और दो वर्ष पूर्व गवना भी हो गया था। उसकी ससुराल रावलपुर में थी जो बनारस से बिल्कुल सटा हुआ था। रूनियाँ का पति शहर में दूध का धन्धा करता था। रूनियाँ अपने पति के पास मुश्किल से साल-डेढ़ साल रही थी और एक दिन लड़कर अपने घर चली आई थी। तब से यहीं है। शुरू में दो-एक बार जब उसका पति उसे लेने आया तो उसने बिना कारण बताये जाने से इन्कार किया। रूनियाँ के बाबू ने सोचा कि अभी उसकी तबीयत आने की नहीं है इसलिये उसने दामाद से इधर-उधर के बहाने बतलाकर उसे लौट जाने को विवश कर दिया। परन्तु यह बहानेबाजी कब तक चलने वाली थी। एक बार रूनियाँ का पति बिगड़ उठा और उसे साथ ले जाने के लिये कटिबद्ध हो गया। उसने चिल्लाते हुए कहा था, 'इस बार तो उसे हम लेकर ही जायेंगे। मुझे सब मालूम है। घाट-घाट का स्वाद वहाँ कहाँ मिल सकता है ?'

उसके पहले कि रूनियाँ का पिता कुछ बोले, रूनियाँ स्वयं क्रोध में भनभनाती हुई बाहर निकल आई और डपट कर बोली, 'खबरदार। जबान से उलटी-सीधी बातें न निकाल वरना अच्छा न होगा। दारू पी कर रात-रात भर पतुरियों के घर पड़ा रहता है और मुझे घाट-घाट का पानी मिला रहा है। लबार कहीं का। अब उन्हीं में से किसी को घर लाकर बैठा ले। मैं तेरे साथ नहीं जाऊँगी, नहीं जाऊँगी।' इतना कह कर रूनियाँ घर में लौट आई थी और वहीं आँगन के कोने में बैठ कर घंटों रोती रही थी।

उसकी माँ ने समझाया, उसके बाप ने समझाया और पास-पड़ौस की औरतों ने समझाया परन्तु रूनियाँ नहीं गई तो नहीं गई। उसका पति लौट गया। सदैव के लिए लौट गया। दुबारा वह नहीं आया। रूनियाँ भी यही चाहती थी। उस जीवन से यह जीवन उसे अधिक पसन्द था। रूनियाँ जाति की अहीर थी।

रूनियाँ का यौवन, उसकी मस्तानी चाल तथा खुलकर सबसे बातें करने की आदत ने गाँव के रसिकों को पहले तो उत्साहित किया परन्तु एक-एक करके जब सब डाँटे गये तो उनकी बड़ी किरकिरी हुई। फलतः बदला चुकाने की भावना से इन लोगों ने उसे बदनाम करने को सोचा और इधर-उधर की बातों का प्रचार करना आरम्भ कर दिया। रूनियाँ कान में तेल डाल सब सुनती रही। उसे तनिक भी चिन्ता न थी। जब कर नहीं तो डर काहे का। कभी उसके माँ-बाप कुछ कहते तो वह घर छोड़ कर भाग जाने को तैयार हो जाती। पुरुषों के छिछोरेपन को बतला तो सकती नहीं थी। विवश होकर उसके माँ-बाप को चुप हो जाना पड़ता। रूनियाँ मनचलों की नींद हराम करती रही।

इधर चार-छः महीनों से स्वयं रूनियाँ की नींद हराम होने लगी थी। जिस संयम से उसने अपने को संभाला था वह टूटता हुआ जान पड़ने लगा था। धीरज उसकी कल्पनाओं में जब तब आने लगा था। उसका व्यक्तित्व उसे आकर्षित करने लगा था। मुँह से हर तरह की बातें कह

कर भी उसे वास्तविक रूप न देने की धीरज की अनोखी रीति उसके हृदय में टीस के संग-संग खिचाँव में वृद्धि करने लगी थी। वह जितना पीछे को हटने का प्रयत्न करती उसे उतना ही आगे बढ़ने के लिये विवश होते जाना पड़ रहा था। प्रयास निष्फल जाने लगे थे। हृदय हाथ से बेहाथ होने लगा था। मन की प्रतिज्ञायें और कसमें केवल चार-छः दिनों तक ही अपना प्रभाव रख पाती थीं। रूनियाँ पुनः धीरज को अपनी कल्पनाओं में संवारने लगती थी।

दोनों जाने-अनजाने एक-दूसरे के समीप आने का प्रयत्न करने लगे। धीरज और रूनियाँ के बीच मजाक वाला रिश्ता था ही फिर आगे बढ़ने में कितना समय लगने को था। वहाँ तो लुकने-छिपने की भी आवश्यकता नहीं थी। उङ्गली सबके सामने पकड़ी जा सकती थी और किसी को सन्देह भी नहीं हो सकता था। धीरज की चारित्रिक धाक और रूनियाँ की निःसंकोचिता अभी कुछ समय तक लोगों की आंखों में धूल झोंक सकती थी। दोनों की छेड़-छाड़ बढ़ती गई। होली आई। अब क्या कहना था? इस त्यौहार में चार-छः दिनों के लिए सातों खून माफ रहते हैं। जो चाहो करो। फिर जहाँ साली-सलहज का सम्बन्ध हो वहाँ तो पाँचों उंगुलियाँ घी में होती हैं।

कल रात में रूनियाँ गोबर डालकर भाग निकली थी। आज धीरज उसकी खोज में था। वह भी उसे एकान्त में ही पकड़ना चाहता था। उसने कई बार इधर-उधर चक्कर लगाए। रूनिया के मकान से भी निकला। दो-चार मिनट रुक कर उसकी माँ से बातचीत भी की लेकिन रूनियाँ नजर नहीं आई। वह आश्चर्य में था। रूनियाँ गई तो कहाँ गई? वह घूमघाम कर सिबनन्दन लाल वाले बाग में आकर खड़ा ही हुआ था कि दूर सीवान में पीयरघट्टा की ओर से वह आती हुई जान पड़ी। उसने ध्यान से देखा। रूनियाँ ही थी। बगल में थोड़े हरे चने दबाये खाती चली आ रही थी।

अवसर मिल गया। वह तेजी से अरहर के खेतों से होता हुआ गन्ने

के खेतों में आ गया। दूर तक दोनों ओर फैले हुए गन्ने के खेतों के बीच से ही रूनियाँ को आना था। धीरज ने एक ईख तोड़ा और डाँड़ पर बैठ कर चूसने लगा। इससे अधिक निर्जनता और कहीं मिलना कठिन थी। फसल के कट जाने के कारण इधर लोगों का आना-जाना भी कम हो गया था। पीयरघट्टा पर जिनके खेत नहीं कटे थे, वे ही सवेरे-सायं जब तब आया जाया करते थे।

पीछे पीठ किए धीरज गन्ना चूस रहा था। परन्तु उसके कान दूर किसी आहट के सुनने में सतर्क थे। कुछ देर बाद खड़खड़ाहट सुनाई पड़ी और वह खड़खड़ाहट समीप आती गई। पता नहीं क्या सोच कर अचानक धीरज उठकर जल्दी से खेत में भीतर छिप गया। रूनियाँ गुन-गुनाती हुई चली आ रही थी। जब वह बिल्कुल समीप आ गई तो धीरज उछलकर उसके सामने आ खड़ा हुआ। रूनियाँ डर गई, 'बड़े वैसे आदमी हो। हम तो डर गए। उसके भीतर क्या कर रहे थें ?'

'तुम्हारे आने की प्रतीक्षा कर रहा था।' धीरज के सारे शरीर में कंपकंपी दौड़ गई थी। शब्द लड़खड़ाते हुए निकले थे।

'मेरे आने की ? यहाँ खेतों के बीच ?' रूनियाँ जानबूझ कर गम्भीर बन गई थी। वह धीरज के मनोभाव को समझ रही थी।

'और कहाँ करता ?' धीरज साहस बटोर कर बोला, 'तुमने भी तो कल रात में मुझे अकेले ही छेड़ा था।'

'तो तुम भी यहाँ छेड़ने आए हो क्यों ?' रूनियाँ की गम्भीरता धीरज के हाथ-पैर ढीले किये दे रही थी।

'छेड़ने नहीं, होली खेलने आया हूँ।'

'होली खेलने आये हो ? बिना रंगवंग के ?'

'नहीं ! अबीर लाया हूँ।' धीरज ने झट से धोती के फेंटे से अबीर की पुड़िया निकाली।

'तो फिर ?' रूनियाँ ने पूछा।

'तुम्हारे लगाऊँ ?'

'हटो जाने दो, पूरे बुद्धू हो। कहीं औरतों के अबीर लगाया जाता है ?' वह बढ़ने को हुई।

धीरज ज्यों का त्यों खड़ा रहा।

'रास्ते से तो हटो। कोई आ गया तो देखकर क्या कहेगा ? मेरे पीछे तो यों ही सब हाथ धोकर पड़े रहते हैं।'

'पर यह तो बुरी बात है कि तुम मुझ पर गोबर फेंक सकती हो और मैं तुम्हें रंग भी नहीं लगा सकता ?'

'नहीं, हमारी बात और है और तुम्हारी बात और। तुम्हारे ऐसा करने से जानते हो लोग क्या कहेंगे ?'

'पर यहाँ देख कौन रहा है ?'

रूनियाँ अपनी मुसकराहट न रोक सकी, 'बड़े चतुर हो। अच्छा एक टीका लगा दो। पर यह समझ लो कि फिर इस तरह का कोई काम नहीं करोगे। अगर मंजूर हो तब तो ठीक, नहीं तो नहीं।'

'मंजूर है।'

'भली-भाँति सोच लो।'

'सोच लिया।' धीरज के अन्दर कुछ उत्साह आया।

'और अगर तुमने फिर हमें यहाँ रोका तो ?'

'तो तुम बोलना बन्द कर देना।'

'पक्की बात ?'

'एक दम पक्की बात। पर अगर तुम ने मुझ पर कुछ डाला तो ?'

'नहीं हम नहीं डालेंगे।'

'अगर डाल दिया तो ?'

'तो तुम भी डाल सकते हो ? जल्दी लगाओ। कहीं कोई आ न रहा हो ?'

धीरज ने अबीर का टीका ललाट पर लगा दिया। आगे के लिये हिम्मत ही नहीं थी।

'लाओ ! मैं भी लगा दूँ, फिर तो लगाना होगा नहीं।' उसने उसकी

पुड़िया से अबीर निकाली, 'बैठ जाओ।'

'क्यों ?'

'अपनी लम्बाई का ध्यान है ? हमें इतने ऊँचे हाथ नहीं उठाना है। जल्दी बैठो भाई।'

धीरज बैठ गया। रूनियाँ ने टीका लगाते हुए उसके पूरे गाल में अबीर पोत दिया और सट से कतराती हुई निकल भागी। धीरज जब तक उठे तब तक वह दूर निकल गई थी। रूनियाँ ने हँसते हुए दूर से अंगूठा दिखा दिया और बाहर निकल गई।

धीरज पोंगा तो था ही।

३

आज होली है। दिन चढ़ते ही परसाँ गाँव में दौड़-धूप और हो-हल्ला मचने लगा। रंग चलने लगा। कीचड़-गोबर फेंके जाने लगे। जो बड़े मुरहा थे वे नालियों की गन्दगी का भी प्रयोग करने लगे। लड़कों की जमात अलग थी और वयस्कों की अलग। देवर-भाभी वाला सम्बन्ध आज बड़ा सुखदायी बन गया था। छीना-झपटी, भागना पकड़ना खूब होने लगा। बुजुर्गों में जो अब भी रसिक थे, वे बोलियाँ बोल कर ही संतोष कर रहे थे। उन्हें इतना ही अब पर्याप्त था। जो स्त्रियाँ तनिक ढीठ और दबंग किस्म की थीं, उनका तो तमाशा देखते ही बनता था। वे उन रसिकों की अच्छी खबर ले रही थीं जो 'सौ-सौ दूतें खाँय तमाशा घुस कर देखें' वालों की श्रेणी में आते थे। होली के बहाने आज उनकी अच्छी मरम्मत हो रही थी। खूब उछल-कूद मची हुई थी।

धीरज भी रंग और कीचड़ खेल रहा था परन्तु कुछ उदास मन से।

जिसकी तलाश थी वह पता नहीं कहाँ गायब हो गई थी ? धीरज कई बार रूनियाँ के मकान का चक्कर लगा चुका था। इधर-उधर जानने का प्रयत्न भी किया था पर किसी को कुछ जानकारी हो तब न। वह कहाँ छिप गई थी कुछ पता नहीं चल रहा था। यहाँ तक कि उसकी माँ भी नहीं बता सकी जब अन्त में निराश होकर धीरज ने उससे पूछा था। 'हाँ ऐसा हो सकता है कि वह,' रधिया की माँ ने अनुमान से बतलाया था, 'अपने बाबू के संग पीयरघट्टा चली गई हो। तुम तो जानते हो कि उसके बाबू को न होली से मतलब न दिवाली से। बैल की तरह दिन-रात काम में जुटे रहते हैं। कितना कहा बुढ़ापे का शरीर है कुछ आराम कर लिया करो पर उनके कान में जूँ तक नहीं रेंगती। न रेंगे। जब ठठाना बदा है तो ठठाते रहें। समझाना अपना.........।'

धीरज जानता था कि रूनियाँ की माँ जब बातें करने लगती है तो फिर पूर्णविराम नहीं लगाती। इसलिये उसने बीच में टोक दिया था, 'क्या करोगी चाची जब उनका स्वभाव ही ऐसा बन गया है तो मजबूरी है। अच्छा अब चल रहा हूँ।' वह तुरन्त दूसरी ओर मुड़ गया था।

धीरज की होली फीकी पड़ गई थी। मन उचट गया था। उत्साह भंग हो गया था। पर उसे व्यक्त न करने में ही चतुराई थी। वह रंग खेलता रहा फिर भी बीच-बीच में अवसर निकाल कर वह सीवान की ओर भी झाँक आया करता था। उसने सोच लिया था कि अगर रूनियाँ आती हुई दिखलाई पड़ गई तो वह गन्ने के खेतों के बीच उससे कस कर होली खेलेगा।

घंटे-दो-घंटे और रंग चले। दोपहर का समय आया। रंग कम हुआ। लोग नहाने की तैयारी करने लगे। कुओं पर भीड़ होने लगी। धीरज को फुर्सत मिली। वह खलियान में जाकर बैठ गया और पीयरघट्टा से आने वाले लोगों को टकटकी लगा कर देखने लगा। घंटा-आध घंटा और बीता तब कहीं रूनियाँ आती हुई दिखलाई पड़ी। पर यह

दिखलाई पड़ना न दिखलाई पड़ने से भी बुरा था। धीरज की सारी कल्पनाओं पर पानी फिर गया। मन छटपटा कर रह गया। रूनियाँ के संग-संग उसका बाबू भी चला आ रहा था। धीरज हृदय में पीड़ा लिये उठकर सरजूराय वाले कुओं की ओर चल पड़ा।

नहाते-खाते और विजया की गोली छानते, दिन के लगभग चार बज गये। नये कपड़े पहने गये। धीरज ने घुटनों तक की धोती बाँधी, चुस्त-सा कुरता पहना और लाल अंगौछा गर्दन में लपेटता हुआ घर से बाहर निकला। सरजूराय के दरवाजे आया। वहाँ पुन: विजया का सेवन ठंडाई के रूप में किया गया और वहीं सहन में बिछी फर्श के किनारे बैठ कर रूनियाँ से मिलने का एकान्त में उपाय सोचने लगा। उसे विश्वास हो गया था कि ऊपर से रूनियाँ चाहे जो कुछ कहे पर मन से वह भी मिलने के लिये उत्सुक रहती है। धीरज को उपाय सोचने में बहुत देर न लगी। उसने उपाय सोच लिया और खड़ा हो गया।

डीह पर नीम की छाँह में रूनियाँ के गोरू बंधे हुये थे। धीरज टहलता हुआ वहाँ जा पहुँचा और इधर-उधर देखकर, जो पिछले वर्ष दो दाँत वाला बछड़ा खरीदा गया था; उसकी पगही खोल दी। बैल उछलता हुआ भाग चला। धीरज दूसरी ओर से घूम कर आवाज लगाता हुआ, 'रूनियाँ, ओ रूनियाँ,' द्वार पर आया।

'क्या है ?' रूनियाँ आंगन से बोली।

'तुम्हारा बछड़ा बाँधा नहीं गया है क्या ? उधर ऊख की ओर भागता चला जा रहा है। जाकर देखो।' धीरज इतना कहकर चलता बना।

रूनियाँ अपनी माँ पर बड़बड़ाती घर से निकली और गन्ने के खेतों की ओर भाग चली। उधर धीरज भी अरहर की खेतों से लुकता-छिपता उसी स्थान पर जा पहुँचा।

रूनियाँ का अनुमान था कि बैल गन्ने के खेतों में घुस गया है। अत: वह भी आवाज लगाती खेत में घुस गई। धीरज को खड़खड़ाहट सुनाई पड़ी। वह समझ गया कि रूनियाँ आ गई। वह बैठ गया और उसके

समीप आने की प्रतीक्षा करने लगा। उसने जेब से मुट्ठी में अबीर निकाल ली थी। रूनियाँ 'हट, हट' करती हुई आई। धीरज उठा और दबे पाँव उसके पीछे पहुँच कर उसे दबा लिया और लगा मुँह में अबीर मलने।

पहले तो रूनियाँ डर गई पर बाद में धीरज को झटकारती हुई अलग हो गई, 'यह क्या बदमासी ?' वह कठोर शब्दों में बोली और अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से क्रोध प्रगट करने लगी।

धीरज भंग की मस्ती में था। उसे किसी बात की क्या चिन्ता थी ? वह हंस पड़ा, 'वही बदमासी जो तुमने सवेरे की थी। तुम्हें किसी की पीड़ा की क्या चिन्ता है ? दूसरों को उल्लू बनाने में अच्छा लगता है किन्तु जब कोई तुम्हें बनाये तो गुर्राने लगती हो। लाओ मूँह पोंछ दूँ नहीं बाहर······'

'धीरज, यह सब मुझे पसन्द नहीं। उस दिन तुमसे टीका क्या लगवा लिया तुम कुछ और ही मतलब लगा बैठे। अगर हम ऐसे होते तो अपने आदमी को छोड़ कर न आते।' वह आँचल से अबीर पोंछने लगी।

'हाँ हाँ। यह सब मुझे मालूम है। मेरे ऊपर रौब न गाँठो। मैं अबीर लगाऊँगा और बार-बार लगाऊँगा, तुम्हें जो करना हो कर लो।' धीरज अभी अपनी मस्ती में था।

'तो लगाओ ! हमने बाबू से न कह दिया तो ऐसी की तैसी। हम क्या रण्डी पतुरिया हैं ? हंसी, हंसी जैसी होती है। हमें धोखा देकर बुलाने का तुम्हारा यही मतलब था ? बड़े आये अबीर लगाने वाले ! जाओ अपने रस्ते।' रूनियाँ के स्वर में वही कठोरता थी।

धीरज की मस्ती जाती रही। उसे काठ मार गया। रूनियाँ हंसी नहीं कर रही थी। उसका चेहरा एकबारगी रूआंसा हो आया। उसके मुँह से भर्राये हुये शब्द निकले, 'वास्तव में यह सब तुम्हें पसन्द नहीं है रूनियाँ ?'

'नहीं ! हंसी, हंसी जैसी होनी चाहिए।'

'हूँ ! मुझ से भूल हुई।' वह सिर लटकाये मुड़ गया।

रूनियाँ वहीं खड़ी रही। धीरज पच्चीस-तीस कदम ही आगे जा पाया होगा कि वह बोली—

गोरी के नकबुल्ली सोभे, सोभे चुनरी पीली,
तिरछे नयन से बान चलाके देत करेजवा छीली।
चली जा, सारारारा, सारारारा, सारारारा······

धीरज ने गर्दन घुमा कर देखा। रूनियाँ ने अंगूठा दिखा कर बिराया और खेत में भाग खड़ी हुई। धीरज पुनः बुद्धू बन गया। उसने रूनियाँ का पीछा किया और गन्नों से उलझते-पुलझते उसके समीप पहुँचा ही था कि वह हंसती हुई खड़ी हो गई और दाहिने हाथ को फैलाकर बोली—'बस ! तुम वहीं खड़े ही जाओ।'

धीरज अब मानने वाला नहीं था। उसने रूनियाँ को भुजाओं में खींच लिया परन्तु तत्क्षण वह अपने को छुड़ाती हुई अलग हो गई, 'चाहे जितना समझाओ तुम्हारी बुद्धि में तनिक नहीं धँसने का। अरे पोंगादास, हम तुम्हारी ब्याही हुई स्त्री नहीं हैं। क्या समझे ? हंसी-दिल्लगी चाहे जितनी कर लिया करो, वह बात दूसरी है पर यह सब बुरा माना जाता है। नहीं करना चाहिए, समझे ?'

'और यदि मैं तुम्हें अपनी स्त्री मान लूं तो ?'

'वाह ! क्या हमारी जैसी तुम्हारी जात में लड़कियाँ नहीं हैं जो हमें तुम अपनी स्त्री मान लोगे ? बिल्कुल घोंघा हो। अपने कुल परिवार की नाक कटाओगे ? तुम पंडित और हम अहीर, कहीं ऐसा भी हुआ है ?'

'तुम क्या जानो ? लाखों बार हुआ है। मन लगने की बात है। अर्जुन ने भगवान कृष्ण की बहिन से ब्याह नहीं किया था ? अर्जुन क्षत्री थे और कृष्ण भगवान अहीर।'

'उनकी तुम्हारी बराबरी, वह सब कर सकते थे, तुम्हारी तो जात चली जाएगी, घर से निकाल दिए जाओगे।'

'निकल जायेंगे ! क्या हाथ-पैर नहीं हैं ? जहाँ मेहनत करेंगे वहीं

खाना मिलेगा।'

'मेरे लिये ? भाँग की गोली चढ़ी है न तभी धरती-आकाश मिला रहे हो। मैं इतनी सुन्दर और हुनर वाली नहीं हूँ जिसके पीछे तुम यह सब करने को तैयार बैठे हो।' उसने इधर-उधर देखा, 'अब जाओ, बड़ी देर हो गई। किसी ने देख लिया तो चुल्लू भर पानी भी डूबने को नहीं मिलेगा।'

धीरज ने रूनियाँ का हाथ पकड़ लिया, 'सचमुच रून्नो, तुम से यदि मैं ब्याह करना चाहूँ तो तुम करोगी ?'

'नहीं !'

'क्यों ?'

'क्यों क्या ? कोई एक-दो कारण हो तो बताऊँ भी। ऐसा कभी हो सकता है।' उसने सिर झुका लिया।

'यदि यहाँ नहीं तो कलकत्ता या बम्बई भाग चलें। वहाँ तो किसी प्रकार का डर न होगा ?'

'क्यों नहीं ? कलकत्ता-बम्बई जरूर भाग चलेंगे, अब जाओ तो सही।' वह तनिक रूठी, 'नहीं, हम जा रहे हैं, तुम बाद में उधर से घूम कर आना' वह चल दी।

'कनपटी के पास वालों में अबीर लगा है उसे तो पोंछ लो' धीरज ने उसे रोकना चाहा।

रूनियाँ ने आँचल से पोंछा।

'ऊँहू ! अभी है ! ठहरो, मैं आकर पोंछ देता हूँ, वह आगे बढ़ा।'

'रूनियाँ समझ गई, तुम किरपा करो ! हम पोंछ लेंगे।' वह बढ़ गई।

धीरज हंसने लगा, 'रात में मिठका आम के पास मैं तुम्हारी बाट जोहूँगा, आना जरूर।' उसने कहा।

रूनियाँ बिना उत्तर दिए चली गई।

४

किसी चीज का चसका लगना ही बुरा होता है। स्वाद मिल जाने पर तबीयत रोकना कठिन हो जाता है। इच्छायें बलवती हो उठती हैं। भलाई-बुराई का ध्यान नहीं रह जाता है। मन का उतावलापन बढ़ जाता है। सदैव उस वस्तु की उपलब्धि की लालसा बनी रहती है। ठीक यही दशा धीरज की हो गई थी। न दिन में चैन न रात में नींद। रूनियाँ उसके तन और मन दोनों में समा गई थी। उसके उठने-बैठने, खाने-पीने और सोने-जागने में सब में रूनियाँ ही रूनियाँ थी। रूनियाँ का विचित्र सम्मोहन था। नदी में प्रवाह के संग बहती नाव के सदृश धीरज बिना पीछे का ध्यान किये आगे बढ़ने लगा था। उसे यह बिल्कुल ध्यान नहीं रह गया था कि तूफान के आने पर बढ़ाव की यह तेजी हाला-डोला में परिवर्तित होकर नाव को नदी के गर्त में डूबो सकती है।

उस रात को रूनियाँ मिटवा ग्राम के पास नहीं आई थी। धीरज ने बड़ी रात तक प्रतीक्षा की थी। दूसरे दिन उसने रूनियाँ से अकेले में भेंट करने का प्रयत्न किया था परन्तु अवसर नहीं मिल सका। तीसरे दिन भी यही स्थिति रही और एक-एक करके पाँच-सात दिन बीत गये। धीरज नित्य सिवनन्दनलाल के बाग में बैठकर पीयरघट्टा से आती हुई रूनियाँ का बाट जोहा करता परन्तु पता नहीं रूनियाँ को क्या सनक सवार हो गई थी कि वह गन्ने के खेतों से न होकर चक्कर लगाकर बाहर-बाहर आती। धीरज कुढ़ कर रह जाता परन्तु अन्त में यह सोच-कर कि कल वह शायद इधर से आवे; वह दूसरे दिन की बेसब्री से प्रतीक्षा करने लगता और इस तरह कल-कल करते-करते इतने दिन बीत

गये थे। रूनियाँ बाहर ही बाहर आती रही।

धीरज के अब समझ में आया कि रूनियाँ ने जान-बूझ कर मार्ग बदला है किन्तु बदलने का कारण क्या है इसे वह अब भी नहीं समझ पाया था। समझ में न आने वाली बात भी थी। कारण, जब वह गाँव में मिलती उस समय उसके भावों या बातचीत में कोई अन्तर नहीं दिखलाई पड़ता था। वह हँसती हुई उसी कटाक्षपूर्ण नेत्रों से देखती, रिश्ते के अनुसार सबके सामने ठिठोली भी करती और लोगों की आँखें बचाकर मुँह बिराती हुई चली भी चली जाती। तात्पर्य यह कि कोई लड़ाई-झगड़ा या रूठने वाली बात का अनुमान नहीं लग रहा था। तब प्रश्न था रास्ते बदलने की नींव का। वह ऐसा क्यों कर रही थी? धीरज सब सोचकर भी निष्कर्ष निकालने में असमर्थ था।

दो-चार दिन और बीते। धीरज के अब भी कारण समझ में नहीं आया और न कोई ऐसा अवसर ही मिला कि वह एकान्त में रूनियाँ से मिनट-दो-मिनट मिलकर कुछ पूछ सके। यद्यपि अवसर की खोज में उसने जमीन-आसमान के कुलावे मिलाने में एक कर दिये थे।

अंधेरा हो गया था। सरजूराय के कुएँ पर धीरज अन्यमनस्क बैठा अपनी गुत्थियों को सुलझाने का प्रयत्न कर रहा था। यह कुआँ गाँव के बिल्कुल बाहर एक बाग के बीच में बना हुआ था। बाग के चारों ओर खांवां खुदा था। संध्या अंधेरी रात में परिवर्तित होने लगी। धीरज अब भी उसी प्रकार बैठा अपनी समस्या को सुलझा रहा था। तब तक अचा-नक एक बैल खांवां फाँदता हुआ बाग के उधर निकल कर अरहर के खेतों में घुस गया। थोड़ी देर बाद युवती भी हाथ में लाठी लिये दौड़ती हुई आई और दूर से उसने आवाज लगाकर पूछा 'किधर गया है?' उसे कुएँ पर बैठे हुये किसी व्यक्ति का केवल आभास मिला था।

धीरज चौंक पड़ा। बिजली की भाँति प्रसन्नता सारे शरीर में दौड़ गई। साथ ही उसकी बुद्धि ने भी इस समय कमाल कर दिखाया। उसने मुँह में उँगली डालते हुये ऊंचे स्वर में कहा, 'सामने अरहर के खेत में

चर रहा था ।'

वह दौड़ती हुई आगे निकल गई ।

धीरज उठा और दबे पाँव उसके पीछे लग लिया ।

उस युवती ने खेत में घुसकर बैल पकड़ लिया और उसकी पगही खींचती हुई मुड़ी ही थी कि पीछे खेत में खड़खड़ाहट सुनकर तनिक चौंकी, 'कौन ?' उसने पूछा । अंधेरे में सूरत तो दिखाई पड़ नहीं रही थी ।

धीरज ने कोई उत्तर नहीं दिया और समीप आते ही उसे अंकवार में भींच लिया । साथ ही उसने बलपूर्वक उसे बैठा भी दिया । रूनियाँ बैठ तो गई किन्तु उसे धक्का देती हुई उसकी भुजाओं से अलग हो गई, 'बड़े निर्लज्ज हो । क्या दिन-रात मेरी ही टोह में रहा करते हो ? खूब है तुम्हारी हिम्मत । क्या अब गाँव में रहने नहीं दोगे ?'

'मैं भी तुम से आज यही पूछना चाहता हूँ । क्या चाहती हो कि कुएँ में गिर कर प्राण दे दूँ या धतूरा पीस कर खा लूँ ?'

'क्यों ? क्या मैं भी तुम्हारे पीछे रात में दौड़ती हूँ या ईख के खेत में छिप कर बैठी रहती हूँ ? तुम्हें न तो अपनी चिन्ता है और न अपनी मान-मर्यादा की । अपने ससुर के संग-संग पूरे गाँव की नाक कटवाओगे क्या ? हमारी नाक तो पहले ही से कटी है । उसके लिये क्या चिन्ता ?'

'हमें शिक्षा तो दो नहीं । अपनी नाक की चिन्ता नहीं है पर हमारी और गाँव की बड़ी चिन्ता है । काजी जी दुबले हैं शहर की चिन्ताओं से । जब मिलो तब वही पाठ । उस दिन रात भर मिठवा आम के नीचे बैठा राह देखता रहा । एक मिलने का स्थान बनाया तो तुमने उस रास्ते से आना-जाना छोड़ दिया । जब यही सब करना था तो मुझे इतने आगे बढ़ाया क्यों ?'

'अच्छी कही तुमने । क्या हमने कहा था कि जहाँ चाहो हमें पकड़ लिया करो और बेसिर-पैर की बातें पूछा करो । पंडित हो न । साठ साल तक पोंगा रहोगे । कई बार कहा कि हमारी जैसी सैकड़ों लड़कियाँ

तुम्हारी जात में तुम्हें मिल जायेंगी पर न मालूम तुम्हारे भेजे में यह बात धँसती क्यों नहीं है ? बेकार मेरे पीछे हाथ धोकर पड़े रहते हो ; छोड़ो हाथ । कहीं माई ढूंढ़ती हुई इधर न आती हो ।'

'छूट चुका ।'

'क्या ?'

'क्या-क्या से अब धीरज नहीं डरने का । आज कुछ न कुछ तय करना पड़ेगा ।'

'क्या तय करना पड़ेगा ?'

'यही कि तुम कल से मुझे रोज इसी समय यहाँ मिला करोगी ।'

'क्यों ?'

'बैठकर बातें करने के लिये ।'

'इस अँधेरे में । बात करने की इतनी भूख है तो संझा समय दरवाजे पर आ जाया करो । क्या वहाँ बातचीत नहीं हो सकती ?'

'हो क्यों नहीं सकती है पर यहाँ जैसी थोड़े हो सकती है ।' समझाया जाता है नासमझ को लेकिन समझदार को कोई क्या समझाये ?

'यहाँ कौन-सी ऐसी बात कर रहे हो जो वहाँ नहीं हो सकती है।'

'क्या वहाँ इस प्रकार तुम्हारे हाथ को पकड़ कर बैठ सकता हूँ अथवा शादी-ब्याह की बातें कर सकता हूँ ?'

'जबरदस्ती तो हर जगह चल सकती है । जिसे अपनी इज्जत की चिन्ता नहीं वह सब कुछ कर सकता है । हाथ छोड़ो । अब चलेंगे ।' रूनियाँ ने हाथ खींचने की चेष्टा की ।

'कह दिया न कि हाथ तभी छूटेगा जब कुछ तय हो जायेगा । मुझे बुद्धू बनाने का प्रयत्न न करो ।'

'जो बुद्धू बना है उसे फिर से बनाने की क्या जरूरत है ?' उसने झटके से हाथ खींच लिया ।

धीरज भी नहीं मानने वाला था और ऐसी स्थिति में माना भी नहीं जा सकता था । उसने भी बल का प्रयोग किया और रूनियाँ को

भुजाओं में भर लिया। 'अब बोलो।'

रूनियाँ ने उसके हाथ में दाँत गड़ा दिये।

धीरज ने 'सी' किया और अपने हाथ को खींच लिया।

रूनियाँ अलग हो गई, 'कैसा लगा ?' उसने पूछा, 'जब तुम अपना बल दिखा सकते हो तो क्या मैं नहीं दिखा सकती ?' वह उठने को हुई।

धीरज ने पुन: पकड़ लिया, 'अभी देखता······।'

तब तक कान में आवाज़ पड़ी, 'रूनियाँ। ओ रूनियाँ।'

'लो आ गये न बाबू ? तुम किसी दिन नाक कटवाकर रहोगे।' वह खड़ी हो गई और चिल्ला कर बोली, 'पकड़ लिया है बाबू। आ रही हूँ।' वह चलने को हुई।

धीरज ने जैसे गिड़गिड़ा कर कहा हो, 'रूनो।'

'क्या ?'

'कल आओगी ?'

'आऊंगी पर यह समझ लो कि आज जैसी हरकत करोगे तो फिर हमारी-तुम्हारी बातचीत नहीं होगी। समझ गये ?'

'कान पकड़ता हूँ। बिल्कुल नहीं करूँगा।'

रूनियाँ मुँह फेर कर मुसकराती हुई चली गई।

५

रूनियाँ बड़ी चतुर थी। वह नित्य धीरज से मिलने को कहती परन्तु, मिलती जब तब और वह भी थोड़े समय के लिये जो न मिलने के बराबर था। यह चीज़ दूसरी थी कि धोखा धड़ी में कभी-कभी धीरज के चक्कर में वह आ जाती परन्तु फिर भी जिस सफलता के लिये धीरज लालायित रहता वह प्राप्त न हो पाती और रूनियाँ दाँव पढ़ा

कर निकल भागती। लालसा प्रबल हो उठती। आकर्षण बढ़ जाता और दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जाता।

बरसात का मौसम आ गया था। पानी बरसने लगा था परन्तु इधर कई दिनों से वर्षा न होने के कारण गलियों और खेतों की गीली मिट्टी सूख गई थी। कीचड़ समाप्त हो गया था। बाहर-भीतर आने जाने में अच्छा लगता था। आकाश में मेघों के टुकड़े आते और चक्कर काटते हुये क्षितिज के गर्त में विलीन हो जाते। धूप-छाँह की उष्णता और शीतलता बड़ी भली लगती। खेतों में ज्वार, बाजरा और मक्का के पौधे लहलहा उठे थे। चारों ओर हरियाली का साम्राज्य फैल गया था। प्रकृति का सौंदर्य निखर आया था।

आज दोपहरी में दो क्षण के लिए धीरज की भेंट रूनियाँ से हो गई थी। धीरज ने रात में भिखारी बाबा वाले बरगद के नीचे मिलने को कहा था। कई दिनों से रूनियाँ से भेंट न होने के कारण उसका मन बड़ा व्याकुल था। कुछ उचटा-उचटा-सा रहता था। रूनियाँ ने मुसकराते हुए आने का वायदा किया था। धीरज को उसके कहने पर विश्वास नहीं था इसलिए उसने पुन: अपनी सौगन्ध दिलाकर वायदे पर मोहर लगवा ली थी और साथ ही यह भी कह दिया था कि यदि इस बार उसने बुद्धू बनाया तो दुबारा उसकी भेंट न हो सकेगी। वह गाँव छोड़ कर चला जायेगा। तब रूनियाँ मुँह बिराती चली गई थी।

रात की प्रतीक्षा होने लगी। शाम आई। पर दुर्भाग्य को क्या कहा जाय ? छितराये बादल सिमटने लगे। जमाव बढ़ने लगा और देखते-देखते काले-काले विकराल मेघों से नभमंडल घिर गया। जल के भार से लदे हुये विकराल टकराये। तड़तड़ाहट हुई। लगने लगा, आसमान फट कर गिर पड़ेगा। गर्जना बढ़ गई। पृथ्वी दहल उठी। पुन: बिजली कड़की, चमकी और मेघों को चुनौती देती हुई ओझल हो गई। मेघों के पास इतनी सहनशीलता कहाँ थी ? उन्हें भी दहाड़ना और दूसरे पर अपनी शक्ति का प्रदर्शन करना आता था। वे भी गरजने लगे।

थोड़ी देर तक जैसे दोनों में होड़ लग गई हो। कड़कना और गरजना दोनों चलता रहा। परन्तु अन्त में बादलों की विजय हुई। वे झमाझूम बरस उठे। मूसलाधार पानी गिरने लगा। धीरज अपने ओसारा में बैठे मन ही मन भगवान को सैंकड़ों गालियाँ देने लगा। उसका सब बना बनाया काम बिगड़ गया था।

समय का ठीक अनुमान नहीं था परन्तु घड़ी भर रात गई होगी ऐसा समझ में आ रहा था। धीरज भोजन करके अपनी खटोली पर आकर लेट गया और सोचने लगा चलने न चलने के विषय में। गाँव सो चुका था। पानी अब भी बरस रहा था किन्तु पहले जैसी तेज़ी नहीं थी। धीरज उठकर बैठ गया। अन्तर्द्वन्द बढ़ गया। कुछ समय और बीता। पानी थमने लगा। धीरज ने चलने का निश्चय किया। अपनी बात से क्यों मुकरा जाय? कहीं वह आ गई तो जीवन भर उसे कहने को हो जायेगा। वह खड़ा हुआ। अगौंछे को सिर पर बाँधा, लाठी उठाई और छप-छप करता हुआ भिखारी बाबा को चल पड़ा।

बरगद के पास पहुँचते-पहुँचते पानी पूर्णरूप से थम गया। केवल बूँदा-बाँदी थी। बरगद के नीचे वह भी न थी। धीरज बरगद से सट कर खड़ा हो गया और प्रतीक्षा करने लगा। लगभग पौन घंटा समाप्त हो गया रूनियाँ नहीं आई। धीरज उसी प्रकार खड़ा रहा। घंटे भर से अधिक का समय बीत गया। रूनियाँ नहीं आई। बरगद के पत्तों पर टपटपाहट बढ़ने लगी। पानी पुनः तेज़ होने वाला था। तब तक बादलों में गड़गड़ाहट हुई और तड़-तड़ करती बिजली चमकी। सारा प्रदेश आलोकमय हो उठा। धीरज को दूर किसी आती आकृति का आभास मिला। मन खिल उठा। रूनियाँ के अतिरिक्त और कौन हो सकता था? वह सामने से हट कर बरगद के पीछे छिप गया। उसने रूनियाँ को डराना चाहा था।

आकृति समीप आती गई पर अंधेरा होने के कारण अभी अनुमान ठीक से नहीं लग पा रहा था। आकृति और समीप आई। बिल्कुल

बरगद के पास आ गई। धीरज दाँत तले उँगली दबा कर काँप उठा। वह रूनियाँ नहीं जमुनवा लोहार था। चोरी करने निकला था। जमुनवा लोहारगीरी के संग-संग रात में उपयुक्त अवसर देख कर लोगों के घर में सेंध भी लगा लिया करता था। धीरज साँस रोककर मन ही मन ईश्वर की स्तुति करने लगा। यदि कहीं जमुनवा ने देख लिया तो बड़ी आफत आ जायेगी। खैर भगवान ने उसकी सुन ली। जमुनवा सीधे आगे बढ़ गया। सम्भवतः आज उसे दूसरे गाँव में चोरी करनी थी।

धीरज ने सन्तोष की साँस ली। रूनियाँ के आने की अब कोई आशा नहीं थी। उसे पुनः बुद्धू बनाया गया था। उसने अपनी लाठी संभाली और खिन्न-चित्त घर को चल पड़ा। पानी जोर का बरसने लगा था। धीरज अभी पचास-साठ कदम ही गया होगा कि फिर कोई सामने हिलती हुई आकृति का आभास मिला। धीरज तनिक सतर्क होकर चलने लगा। यद्यपि अब किसी प्रकार का भय नहीं था फिर भी जान-कारी की जिज्ञासा तो थी ही। दोनों और समीप आए। धीरज को रूनियाँ जैसी आकृति प्रतीत हुई, वह ठिठका, 'कौन है?' उसने पूछा।

उधर से कोई उत्तर नहीं मिला। आकृति पहचान में आ गई। वह रूनियाँ ही थी, धीरज का हृदय झूम उठा। रूनियाँ बिल्कुल समीप आ गई 'लौटे जा रहे थे?' उसने पूछा।

'क्या करता? घंटों से खड़ा हूँ।'

'तो मैं क्या करती? तुम्हारी तरह मुझ में उतावलापन नहीं है। कसम दिलाई थी इसलिए आ गई, नहीं तो आती भी नहीं। तुम्हारी बात हो गई न? अब हम जायें?'

धीरज ने उसका हाथ पकड़ लिया 'क्यों नहीं? अब तुम जरूर जाओगी।' वह रूनियाँ का हाथ खींचता हुआ बरगद की ओर चल पड़ा।

दोनों भीगे हुए थे। बरगद के नीचे आने पर अपने-अपने कपड़े

निचोड़े। धीरज ने सिर से अंगोछा खोल कर अपना मुँह पोंछा और फिर रूनियाँ का पोंछने लगा। रूनियाँ ने अंगोछा उसके हाथ से ले लिया। दोनों पेड़ से सट कर खड़े हो गए। पुराने और सघन बरगद की मोटी-मोटी डालियों ने पानी का बरकाव कर दिया परन्तु अभी और बरकाव की गुँजाइश थी अगर वे दोनों इकाई में परिवर्तित हो जाते। अन्त में यही हुआ भी। मिनट-दो-मिनट भी न बीते होंगे कि दोनों एक दूसरे के आलिंगन में कस गए और एक-दूसरे से मुंह सटा कर बातें करने लगे। धीरज बोला—'आज अगर तुम न आतीं तो हमने कल गाँव छोड़ दिया होता।'

'तो इसमें नुकसान किसका था ? पछताना तो तुम्हीं को पड़ता। हम तो जैसे अब हैं वैसे तब भी रहते।'

'क्या तुम्हें मेरे जाने का दुःख न होता ?'

'बिल्कुल न होता। जब तुम हमें छोड़ सकते हो तो क्या हम तुम्हें नहीं छोड़ सकते हैं ? जब तुम्हें हमारी चिन्ता नहीं तो हमें तुम्हारी क्यों होने लगी ?'

धीरज ने उसके होंठों को काट लिया, 'मेरे संग भाग कर चला सकती हो ?'

'तुम अपनी सोच लो। मुझे भागने में कितनी देर लगेगी ? जब कहो तब चले चलें।'

'मैं सोच कर ही तो कह रहा हूँ और बहुत पहले से कह रहा हूँ अगर तुम तैयार हो गई होतीं तो अब तक हम लोगों का घर बस गया होता।'

'कब चल रहे हो ? कल ?'

'कल भी चल सकता हूँ।' धीरज बड़ा प्रसन्न था, रूनियाँ आज स्वयं सब कुछ कह रही थी।

'और चलोगे कहाँ ?'

'कलकत्ता।'

'पर एक बात और समझ लो फिर परसाँ में आना न हो सकेगा। यह सदा के लिए छूट जाएगा।'

'रूनो के लिए तो समूचा संसार छूट जाए तो कोई चिन्ता नहीं। इस परसाँ की क्या बिसात ?'

रूनियाँ ने अपने हाथ ढीले किए, 'छोड़ो।'

'क्यों ?'

'अब चलना चाहिए।'

'इतनी जल्दी ?'

'बहुत समय हो गया है, कहीं माई जग गई तो ?'

'फिर चलने के लिए क्या तय किया ?' धीरज अभी उसी प्रकार जकड़े रहा।

'तीन-चार दिन बाद। गाड़ी-वाड़ी का सब टैम तो पता लगा लो। यहाँ से निकल चलना आसान काम थोड़े है। भनक पड़ते ही सब भरभंड हो सकता है। बहुत चतुराई से सब कुछ करना होगा, छोड़ो।' वह नीचे बैठती हुई सट से अलग हो गई।

धीरज ने हाथ पकड़ कर पुनः आबद्ध करना चाहा पर रूनियाँ ने बिल्कुल नाही कर दिया। धीरज को रुक जाना पड़ा। वह बोली—'तुम बाद में जाना' वह चलने को हुई फिर रुक गई 'परसों इसी समय यहाँ मिलना। कल परसों तक हमारी सब तैयारी हो जायेगी। तुम भी सब पता लगा लो। अब हम जायें ?'

'जाओ।'

उसके जाने के कुछ समय उपरान्त धीरज भी आगामी जीवन की सुखद कल्पना करता हुआ धीरे-धीरे घर को चल पड़ा।

६

मनुष्य सोचता है कुछ और परन्तु संसार का रचने वाला कर देता है कुछ और। ठीक भी करता है। यदि ऐसा न करे तो सृष्टि में विषमता फैल जाय। सारा प्रबन्ध बिगड़ जाय, उसके प्रति किसी की आस्था न रह जाय।

धीरज और रूनियाँ की कथा उस समय की है जब देश को स्वतंत्रता नहीं मिली थी। अंग्रेजों के अत्याचार से भारत का कण-कण कराह उठा था और बापू के नेतृत्व में इससे छुटकारा पाने के लिए जी-जान से तत्पर हो उठा था। सन् १९४२ की चिंगारी सुलगने लगी थी और कब भड़क कर लौ का रूप धारण कर लेगी इसी की प्रतीक्षा थी। देश के बच्चे, बूढ़े और जवान सब ने कमर कस ली थी। स्त्रियों का सहयोग भी सराहनीय था। वे भी हर तरह से हाथ बटा कर अपनी खोई हुई आजादी को प्राप्त करने के लिए तन और मन से जुट पड़ी थीं। उन्होंने प्राचीन भारत के आदर्श को गौरवान्वित करने में कोई कसर नहीं उठा रखी थी। देश के कोने-कोने से 'इन्कलाब, जिन्दाबाद' का नारा उठ कर वायुमण्डल को कम्पित करता हुआ दूर लंदन में बैठे साम्राज्यवादियों के नेताओं को चुनौती देने लगा था। जनता की शक्तियों का परिचय कराने लगा था। लंदन में कंपकंपी फैलने लगी थी। परन्तु उनकी मशीनगनें, बड़ी-बड़ी तोपें और पलक गिरते हजारों की संख्या में मनुष्यों का संहार करने वाले भयंकर बमों ने उन्हें ढ़ाढ़स देकर उनकी बुद्धि पर पर्दा डाल दिया था। वे मदान्ध हो रहे थे।

समय आया। महात्मा गाँधी ने 'भारत छोड़ो' का नारा लगाया। देश इसी की प्रतीक्षा में था। क्रान्ति की चिंगारी फूटी। अंग्रेजों ने चिंगारी को दबाना चाहा। देश के नेता गिरफ्तार किए जाने लगे। उन की समझ में दमन वाला रास्ता उपयुक्त था। लेकिन नेताओं की गिरफ्तारी ने आग में घी का काम किया। वह और प्रज्वलित हो उठी। 'भारत छोड़ो', 'अंग्रेजों भारत छोड़ो', 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' की आवाज देश के कोने-कोने से आने लगी। चिंगारी लपट बनकर फैलने लगी और देखते-देखते धू-धू कर के जलने लगी। नेता विहीन देश मन-मानी करने पर उतर आया। उतरना स्वाभाविक था। बर्दाश्त की सीमा होती है। घुट-घुटकर मरने से उत्तम था अपनी ताक़त को आज़-माते हुए गोली का शिकार हो जाना। नगर-नगर और गाँव-गाँव से सिर पर कफ़न बाँधे शहीदों की टोलियाँ निकलने लगीं। रेल की पटरियाँ उखाड़ी जाने लगीं, तार काटे जाने लगे, पुलिस चौकियाँ जलाई जाने लगीं, कचहरियों और डाकखानों पर अधिकार स्थापित किया जाने लगा, फौजी कार्यों में बाधायें उत्पन्न की जाने लगीं, बड़े-बड़े जुलूस निकाल कर तथा अधिक से अधिक संख्या में बन्दी बनकर जेल को भरने का प्रयास किया जाने लगा जिससे व्यवस्था में अस्त-व्यस्तता आ जाय। चन्द्रशेखर आजाद और भगतसिंह के अनुयायियों ने जंग लगे हुए तमंचों और बमों को संभाला। उधर बलिया की जनता ने पूर्ण रूप से स्वतन्त्रता की घोषणा करके सम्पूर्ण शासन की बागडोर अपने हाथों में ले ली। बलिया के शेर चीतू पांडे की दहाड़ देश के दूरस्थ भागों में सुनाई पड़ने लगी और प्रत्येक देशवासी को प्रोत्साहित करने लगी कि वह भी ऐसी ही दहाड़ दहाड़कर इस भू-भाग से विदेशी सत्ता का अन्त करे।

पुलिस के पिट्ठुओं और धीरज से मन ही मन बैर रखने वालों ने अपना बदला निकाला। उन लोगों ने थाने में धीरज का नाम तोड़-फोड़ करने वालों में लिखवा दिया था। दारोगाजी को भी ऐसे कुछ नामों की

आवश्यकता थी। बिना सौ-पचास व्यक्तियों को गिरफ्तार किये वह अंग्रेजी सरकार के वफादार मुलाजिम कैसे कहला सकते थे ? उन्हें तो इन्सपेक्टर बनना था। उन्होंने छोटे दारोगा को नामों की सूची दे दी थी और शीघ्र से उन्हें गिरफ्तार करने को कहा था।

उधर धीरज की नई-नई कल्पनाओं का निर्माण हो रहा था। स्वप्न संवर रहा था। प्रसन्नता बिखर रही थी। उसने स्टेशन जाकर गाड़ियों के समय का पता भी लगा लिया था और किसी प्रकार जल्दी से तीन-चार दिन बीतें इसी की प्रतीक्षा थी। रूनियाँ ने भी तैयारी कर ली थी।

दो दिन बीते। तीसरे दिन आधी रात वाली गाड़ी से निकल भागने का निश्चय हुआ था। सवेरा हुआ। लगभग दस बज रहे होंगे। धीरज दरवाजे पर बैठा चबैना चबा रहा था कि दारोगा जी चार पुलिस वालों के संग आ पहुँचे। साथ में गाँव का चौकीदार भी था। उसने धीरज की ओर संकेत किया। दो पुलिस वालों ने बढ़कर पकड़ लिया और तत्काल उसके हाथों में हथकड़ी डाल दी। धीरज गिड़गिड़ाने लगा। उसे कारण समझ में नहीं आया था। तुरन्त गाँव में खबर फैल गई। देखते-देखते पूरा गाँव वहाँ इकट्ठा हो गया। पूछने पर मालूम हुआ कि धीरज के विरुद्ध सरकार के खिलाफ गुप्त रूप से काम करने की रिपोर्ट है। वह अंग्रेजी सरकार को उलटना चाहता है।

जो कुछ दारोगा जी को लिखना-पढ़ना था उसे लिखा। तदुपरान्त धीरज को लेकर चल पड़े। धीरज के पिता तुल्य श्वसुर खड़े-खड़े आँसू बहाते रहे। उन्हें दारोगा जी से जितनी आरजू मिन्नतें करनी थीं, सब कर ली थीं। दारोगा जी असमर्थ थे। वह छोड़ नहीं सकते थे। धीरज की कमर में रस्सी बाँध कर पुलिस वाले ले गये। वृद्ध रोता हुआ गिर पड़ा।

रूनियाँ भी भीड़ में खड़ी आँसू बहा रही थी। होने को क्या था और हो गया क्या ? होनहार प्रबल है।

याद आती है तुम्हारी याद आती ही रहेगी,
लुट गया है फिर भी अपने प्यार की थाती रहेगी;
तुम रहो नजदीक या आँखों से जितनी दूर जाओ—
प्रीत का सौदा किया है प्रीत भाती ही रहेगी।

७

धीरज को मजिस्ट्रेट ने छः मास की सख्त सजा दे दी। वह जेल भेज दिया गया। जेल में भी उसके साथ कठोरता का व्यवहार किया गया। कारण, जेल के छोटे और बड़े जमादार साहब की जेब गर्म नहीं हो सकी थी। धीरज चक्की पीसने में लगा दिया गया। पन्द्रह-पन्द्रह और बीस-बीस सेर खड़े होकर आटा या दाल पीसना इन्सानियत के नाम पर कलंक लगाना ही था न?

महीना भर बीता। धीरज की घनिष्ठता अन्य व्यक्तियों के अपेक्षा उसके बगल में चक्की पीसने वाले से अधिक बढ़ने लगी। यद्यपि उस व्यक्ति की लम्बी-लम्बी दाढ़ी, बिखरे हुये सिर के बाल, सदैव चेहरे पर फैली हुई उदासी और एक पैर से लंग खाते हुए चलना--उसके व्यक्तित्व को घिनौना बनाये थे, परन्तु उसकी बातों में जो आकर्षण था वह अनोखा था और यही कारण था कि धीरज दिन-प्रतिदिन उसकी ओर खिंचता चला जा रहा था। वह भी थोड़ी-बहुत जो बातें करता था धीरज से ही करता था अन्य कैदियों से नहीं। पूछने पर मालूम हुआ था कि उसे चार वर्ष की सजा हुई थी जिस में एक वर्ष बीत चुका था।

धीरज की घनिष्टता उससे बढ़ती गई। वह देश-विदेश की अनोखी और नाना प्रकार की बातें बताने लगा। धीरज सुनता और आश्चर्य-चकित उसे निहारा करता। धीरे-धीरे दो माह समाप्त हो गये। अब दोनों में अधिक गुपचुप बातें होने लगी थीं। एक दिन वह धीरज से बोला, 'अगर देश की स्वतंत्रता के हेतु तुम्हें अपनी जान की बाजी लगानी पड़े तो तुम लगा सकते हो?'

'इसे भी पूछने की आवश्यकता है? आपने मुझे मेरे कर्तव्यों का भली-भाँति ज्ञान करा दिया है; परन्तु दुःख है कि अब मुझे यह सौभाग्य नहीं प्राप्त हो सकता।'

'नहीं। ऐसी कोई बात नहीं है। हो भी सकता है।'

धीरज ने विस्मय के साथ उसे देखा, 'हो सकता है? कैसे?'

उस व्यक्ति ने उसी गम्भीरता से उत्तर दिया 'जेल से भाग कर। बड़ा आसान है।'

धीरज के नेत्र फैल गये। उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। जेल से भी भागा जा सकता है—उसकी कल्पना के परे की बात थी। उसके मुँह से निकला, 'जेल से भाग कर! क्या हम लोग बाहर निकल सकते हैं?'

'हाँ। मैंने पूरी तैयारी करली है। सब प्रबन्ध हो गया है। अगर भारत माता की जंजीरों को तोड़ने में तुम भी अपना हाथ बटाना चाहो तो बाहर चल सकते हो। ऐसा हो जायेगा।'

'मैं तैयार हूँ। आप मुझे बाहर ले चलें।'

'इतनी जल्दबाजी नहीं। इसे अच्छी तरह सोच लो। कार्य कठिन है। जीवन-मरण का प्रश्न है।'

'सम्भवतः पूर्ण रूप से आपको मुझ पर विश्वास नहीं हो पाया है। यही बात है न?'

दाढ़ी वाला व्यक्ति मौन रहा। कुछ बोला नहीं। थोड़ी देर तक कुछ सोचते रहने के उपरान्त उसने कहा, 'अच्छी बात है। मैंने लोहा काटने वाली आरी मंगा ली है। इस सप्ताह के भीतर सब हो.......।'

सामने से कोई सिपाही आता हुआ दिखलाई पड़ा। दोनों पीसने में तल्लीन हो गये। फिर कोई बातचीत नहीं हुई।

धीरज और दाढ़ी वाला दोनों एक ही बैरेक में रहते थे किन्तु धीरज दरवाजे के पास सोता था और वह बैरेक के दूसरे गेट पर टट्टी के पास। कल से दाढ़ी वाले का काम शुरू हो गया था। डेढ़ बजे रात में जब

ड्यूटी बदलती और पहरे का सिपाही दीवार के सहारे बैठकर ऊँघने लगता तो वह धीरे से उठता। टट्टी के लिए पानी लेता और टट्टी में जाकर बैठ जाता। फिर वह अपनी छोटी आरी से टट्टी के पीछे लगे छड़ को धीरे-धीरे काटता रहता। तीन का घंटा बोलते ही वह उठकर बाहर आ जाता और चुपके से अपने बिछौने पर लेट रहता।

पाँचवें दिन उसने धीरज से कहा, 'आज चलना है। रात में सिपाही की ड्यूटी बदलने के उपरान्त तुम टट्टी में चले जाना और मेरी प्रतीक्षा करते रहना। थोड़ी देर बाद मैं भी आजाऊँगा। उसके बाद दोनों निकल चलेंगे।'

'कैसे ?'

'उसी समय मालूम हो जायेगा। बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। समझ गये ?'

धीरज ने सिर हिला कर हाँ किया।

रात के डेढ़ बजे। सिपाही की बदली हुई। सिपाही ने बैरेक के चारों ओर घूम कर अपने कैदियों की गिनती की और 'ठीक हैं' कह दिया। पहले वाला चला गया। थोड़ी देर तक टहलते रहने के उपरान्त सिपाही बैठ गया और निद्रा देवी के पालने में झूलने लगा।

धीरज जग रहा था वह उठा और टट्टी में चला गया। थोड़ी ही देर बाद दाढ़ी वाला भी आया। उसने कटे हुये छड़ों को अलग किया और धीरे से निकाल लिया। रास्ता बन गया। वह बाहर निकला। फिर धीरज बाहर निकला। क्षण भर इधर-उधर देखने के उपरान्त वह धीरज को संकेत से अपने पीछे आने को कहता हुआ दबे-पाँव अस्पताल की ओर चल पड़ा। अस्पताल के पीछे, दीवार के सहारे एक बाँस रखा हुआ था। उसने बाँस को दीवार के सहारे लगा दिया और सट से चढ़ता हुआ दीवार की मुंडेर पर जा पहुँचा। धीरज भी उसी फुर्ती से ऊपर जा पहुँचा। गाँव का जो रहने वाला था। बाँस को खींच कर बाहर की ओर लगाया गया और दोनों उतर कर लम्बे-लम्बे डग रखते

हुये बाहर की ओर चल पड़े। आगे-आगे दाढ़ी वाला चल रहा था।

संकरी गलियों से चक्कर काटता हुआ दाढ़ी वाला एक मकान के सामने खड़ा हुआ और दरवाजे पर थपकी दी। तुरन्त दरवाजा खुल गया। मानो खोलने वाला थपकी की इन्तजार में बैठा ही था। दोनों अन्दर आ गये। दाढ़ी वाले ने पूछा, 'सब ठीक है ?'

'हाँ गुरुदेव।' दरवाजा खोलने वाले ने उत्तर दिया। वह एक अट्ठाइस-तीस वर्ष का युवक था।

'इन्हें भी जेल से निकाल लाया हूँ। तुम्हारे कार्यों में हाथ बंटायेंगे। इनका नाम धीरज है।'

'उत्तम है।' युवक ने पुनः धीरज को देखकर गुरुदेव की ओर मुँह कर लिया।

'मोटर साइकिल............।'

युवक बीच में बोल पड़ा, 'नुक्कड़ पर खड़ी है। पीछे पेट्रोल और मोबिल आयल अतिरिक्त हैं।'

'धीरज को भी साथ लिये जा रहा हूँ।'

'जी हाँ। ठीक है।'

गुरुदेव बाहर निकले। नुक्कड़ पर आकर मोटर साइकिल संभाली, स्टार्ट की और उड़ चले। धीरज पीछे बैठा नाना प्रकार की बातें सोच रहा था। मोटर साइकिल शहर छोड़ती हुई अस्सी और पिच्चासी मील की रफ्तार से चली जा रही थी।

८

चित्रकूट के घनघोर जंगलों में एक पहाड़ी की चोटी पर एक गुफा दिख रही थी। गुफा में आग जल रही थी और वहीं एक व्यक्ति अपने

सारे शरीर में भस्म लगाये मौन बैठा था। गुफा में धुआँ भरा हुआ था इस कारण गुफा का भीतरी भाग साफ दिखलाई नहीं पड़ रहा था। वैसे यह सुरंग के रूप में काफी दूर तक पीछे चलती गई थी। सुरंग की समाप्ति पर कुछ खुली जगह थी जिसकी रोशनी में यहाँ अन्य कई बड़ी-बड़ी गुफाओं को देखा जा सकता था। इन्हीं गुफाओं के किनारे वाली गुफा में दस-बारह लोगों के संग बैठे गुरुदेव बातें कर रहे थे। बगल में धीरज भी बैठा हुआ था।

'गुरुदेव,' एक ने कहा, 'अगर अंग्रेजों की दमन नीति इसी प्रकार चलती रही तो बहुत जल्द मूवमेन्ट समाप्त हो जायेगा। जनता के अन्दर अब वह जोश नहीं है।'

'यह तो स्वाभाविक है दिनेश,' गुरुदेव बोले, 'गोलियों के आगे सीना तान कर खड़ा होना आसान काम नहीं है। स्वतन्त्रता सबको प्रिय है। सभी देश को आज़ाद देखना चाहते हैं; किन्तु सभी इस उद्देश्य की पूर्ति के हेतु अपनी जान की बाजी लगा दें, ऐसी सम्भावना तो नहीं है।'

'तो फिर परिणाम क्या निकला ?'

गुरुदेव मुसकराये, 'तुम तो अनुमान के आधार पर परिणाम निकालने लगे दिनेश। कर्म प्रधान है, निष्कर्ष नहीं। तुम्हारा जो कर्तव्य है उसे करते रहना है। जनता का जोश कभी न कभी तूफान का रूप धारण करके अंग्रेजी सत्ता की इतिश्री करेगा ही। तुमने अपने जीवन का उत्सर्ग केवल उसी जोश को उभाड़ने के हेतु किया है न ?'

'हाँ गुरुदेव।' दिनेश का सिर झुक गया था।

'तो फिर चिन्ता की क्या बात है ? सन् १८५७ में आजादी की लड़ाई जो लड़ी थी उससे इस बार हम दो कदम आगे हैं और उम्मीद करते हैं कि अगर यही लगन बनी रही तो अब बहुत शीघ्र हमारी स्वतन्त्रता हमें मिलकर रहेगी। आज संसार की जो स्थिति है उससे हमें जरूर फायदा होगा।'

दिनेश चुप हो गया। उसे अपनी बात अनुचित लगी। गुरुदेव का कथन सत्य और उपयुक्त था।

गुरुदेव पुनः बोले, 'मैं समझता हूँ दिनेश, धीरज की ट्रेनिङ्ग अगर तुम्हारी देख-रेख में हो तो उत्तम होगा। इन्हें अभी बहुत सी चीजों की जानकारी करानी होगी।'

'ठीक है। मैं कल से इन्हें अपने साथ-साथ रखूँगा।'

फिर गुरुदेव ने आगे के कार्यक्रमों की रूपरेखा को भली प्रकार समझाया। किन-किन शहरों में पार्टी को किस प्रकार संगठित करके वहाँ के सरकारी कामों में गड़बड़ी फैला दी जाय तथा उपयुक्त अवसर हाथ आने पर मुख्य अंग्रेज पदाधिकारियों को गोली का शिकार बना दिया जाय आदि, प्रश्नों पर वह नाना प्रकार के उपाय बतलाते रहे। अन्त में अगले मास की पहली तारीख को पुनः एकत्रित होने का आदेश देते हुए गुरुदेव ने गोष्ठी समाप्त की। सब गुरुदेव के चरण स्पर्श करते हुए सुरंग से एक-एक करके बाहर निकले और उस जंगल में खो गए।

क्रान्तिकारियों की यह पार्टी गुरुदेव के नेतृत्व में देश की स्वतन्त्रता के हेतु अपना सर्वस्व न्योछावर कर रही थी। गुरुदेव का व्यक्तित्व उज्ज्वल और अनुकरणीय था।

एक महीने बाद पहली तारीख को पुनः सब लोग इकट्ठे हुए। भोजन बनवाया गया। तदुपरान्त ऊपर झरने में स्नान हुआ और फिर भोजन किया गया। सबने मिलकर झटपट बरतन साफ किए और उसी गुफा में आकर बैठ गये। गुरुदेव ने बारी-बारी से पूछना आरम्भ किया। प्रत्येक ने विस्तार के साथ अपने कार्यों का विवरण प्रस्तुत किया। गुरुदेव मौन सुनते रहे। सब समाप्त हो जाने पर गुरुदेव ने अपने विचार व्यक्त किए और कुछ सुझाव रखे तदुपरान्त अगले मास के कार्यों की रूपरेखा बतलाई।

धीरज बोला—'गुरुदेव से एक निवेदन है।'

गुरुदेव ने उसकी ओर देखा 'कहो।'

'मेरी इच्छा है कि मैं अपने क्षेत्र में अपनी पार्टी का काम करूँ। उधर इसकी आवश्यकता है। जनता में चेतना की एक नई लहर दौड़ जायेगी।'

गुरुदेव मन ही मन प्रसन्न हुए, 'ठीक है, कर सकते हो किन्तु स्वतंत्र रूप से तुम इस भार को ····।'

धीरज बीच में बोल उठा, 'गुरुदेव निश्चित रहें। सब होगा। जहां आप का आशीर्वाद प्राप्त है वहाँ कौन-सा कार्य दुर्लभ है। आप मुझे अनुमति दें फिर देखें मैं किस प्रकार का बवंडर खड़ा कर देता हूँ?'

गुरुदेव ने सिर हिलाया, 'अच्छी बात है। करो। भगवान चाहेगा तो तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी।'

६

दैनिक पत्रों द्वारा जब परसाँ गाँव में धीरज के जेल से भाग निकलने की सूचना फैली थी तो बहुतों को विश्वास नहीं हुआ था; परन्तु अन्त में पुष्टि हो जाने पर लोगों का भ्रम तो जाता रहा था लेकिन आश्चर्य की सीमा का उल्लंघन हो जाने के कारण धीरज हफ्तों चर्चा का विषय बना रहा। जवान, बूढ़े, औरत, मर्द सभी की जबान पर धीरज का जिक्र था। रूनियाँ सबकी सुनती थी और सोचने की चेष्टा करती थी। वह औरों की भांति स्वयं किसी प्रकार की अटकलबाजी नहीं लगा पा रही थी। किन्तु उसका मन बार-बार कहता था कि अगर धीरज जेल से बाहर होगा तो कभी न कभी उससे मिलने अवश्य आएगा।

मास-दो-मास बीत गए। धीरज की स्मृति प्रायः गाँव वालों के मस्तिष्क से विस्मृत हो चुकी थी पर रूनियाँ अब भी रात की नीरवता में धीरज की कल्पनाओं में खो जाया करती थी। यद्यपि उसके आने के

सम्बन्ध में मन की दृढ़ता पहले जैसी नहीं थी। कभी-कभी उसके मन में यह भी सन्देह उठने लगता कि सम्भव है, भागने वाला कोई दूसरा धीरज हो। कारण, जेल से बाहर रहने पर वह उससे मिलने न आये—असम्भव था। उसका प्यार स्वार्थ रहित और सच्चा था और ऐसा ही रूनियाँ का। रूनियाँ की कल्पनायें पलती रहीं। जब तक साँस तब तक आस वाली बात थी। 'लगी' की यही विचित्रता है।

गोधूलि की बेला समाप्त हो चुकी थी। गाँव के बाहर, खेतों के ऊपर धुएँ की पतली लम्बी लकीर फैल गई थी। खेलते हुए गाँव के बालकों का कोहराम शान्त हो चला था। दीया-बाती होने लगी थी। किन्हीं घरों में भोजन पक चुका था और किन्हीं में थोड़ा-बहुत शेष था। नादों में चोकर-भूसी डालकर शेष बचे हुए चारे को चट कर जाने की लालच जानवरों को दी जाने लगी थी। रूनियाँ अभी सब नादों में भूसी नहीं मिला पाई थी कि उसकी माँ चिल्लाती हुई अन्दर से बोली, 'थोड़े गोंइठा तो दे जाना।'

रूनियाँ बचे हुए नादों में चोकर डालकर पीछे डीह पर लगे हुए गोहरौर से गोहरा लेने चली गई। इस समय इधर पूर्णतः निर्जनता थी।

झुकी हुई रूनियाँ अभी कपड़े निकाल रही थी कि किसी के पैरों की आहट मिली। उसने गर्दन उठाकर देखा। उसे आगन्तुक अजनबी प्रतीत हुआ। वह खड़ी हो गई। वह और समीप आया। रूनियाँ डरी। आगन्तुक साहबों जैसा टोप और कपड़े पहिने हुये था। वह भागने को हुई कि उस टोपधारी ने लपक कर उसका हाथ पकड़ लिया और दूसरे हाथ से उसके मुँह को बन्द करते हुए बोला, 'मैं धीरज हूँ, रूनियाँ धीरज।'

रूनियाँ का शरीर काँप रहा था। उसने हिम्मत करके आँख उठाई। उसे विश्वास नहीं हुआ था। कैसे होता? घुटनों तक धोती बाँधने वाला इस वेशभूषा में! धीरज ने हैट उतार दी, 'अब भी पहचान में नहीं आया रूनो?'

रूनियाँ उसी प्रकार टकटकी लगाये देखती रह गई। क्षण भर बाद

उसके नेत्रों से आँसू बह निकले।

'जाओ कपड़े रखकर भिखारी बाबा के पास आओ। मैं वहीं चल रहा हूँ।' धीरज उधर को मुड़ गया।

रूनियाँ किंकर्तव्यविमूढ़ खड़ी की खड़ी रह गई। वह स्वप्नलोक में थी या डीह पर, समझ नहीं पा रही थी। अंग-अंग प्रसन्नता से नाचने लगा था। धीरज के आँखों से ओझल हो जाने पर उसे अपना ध्यान आया। उसने झटपट आँचल में कपड़े भरे और लाकर आँगन में पटकती हुई, 'अभी आई,' कह कर तेजी से बाहर निकली और भिखारी बाबा वाले बरगद की ओर चल पड़ी।

धीरज वहाँ खड़ा प्रतीक्षा कर रहा था। रूनियाँ ने और आगे सीवान में चलने को कहा। दोनों गाँव से काफी दूर बाहर निकलकर एक चिकनी डाँड़ पर आमने-सामने बैठ गये। रूनियाँ बिल्कुल सटकर बैठी और उसे निहारती हुई लगी उसके कपड़ों को टो-टो कर अनुमान लगाने। धीरज चुपचाप मुसकराता रहा। रूनियाँ ने उसके कंधे पर लटकती हुई उस छोटी वस्तु के विषय में पूछा, 'यह क्या है ?'

'पिस्तौल। अँग्रेजों को मारने के लिये।'

'पिस्तौल ! बाप रे !! तुम, लोगों को मारने भी लगे हो ?'

'लोगों को नहीं केवल अँग्रेजों को। जब वे हमें मारते हैं तो हम उन्हें नहीं मार सकते ?'

'और कहीं फिर पकड़ लिये गये तो ?'

'तो क्या हुआ ? भगतसिंह की भाँति फाँसी पर चढ़……।'

रूनियाँ ने उसके मुँह पर हाथ रख दिया, 'फाँसी चढ़ें अंग्रेज। तुम क्यों चढ़ने लगे ? तुम रहते कहाँ हो ?'

'कोई ठिकाना नहीं। बलिया, बनारस, जौनपुर, बकसर, आजमगढ़—कहीं भी रह सकते हैं। किसी एक स्थान पर निश्चित रूप से रहना नहीं होता।'

'पर इतने दिन कहाँ रहे ? जेल से भागने की खबर तो कागज में

पहले छप गई थी। हम सब दिन तुम्हारे आने की बाट जोहते रहते थे।'

'मुझे इसका अनुमान है किन्तु कुछ ऐसी उलझनें थीं कि चाह कर भी आने में असमर्थ था।'

'झूठ,' रूनियाँ ने मुँह बनाया, 'चाहने वाले के लिए कोई काम कठिन है ? जो इतनी ऊँची दीवार फाँद सकता है वह रूनियाँ से……।'

धीरज ने हँसते हुए उसे अंकों में भर लिया, 'मैं सच कहता हूँ रूनो, ऐसी ही विवशता थी अन्यथा……।'

'बस, बस, रहने दो। हम सफाई थोड़े माँगते हैं। तुम्हारी बातों पर भरोसा है। अब आज कहां रहोगे ?'

'बनारस।'

'आओगे कब ?'

'जब कहो।'

'रहने दो। ऐसे आज्ञाकारी नहीं हो।' वह क्षण भर रुककर बोली, 'पर हम कहते हैं, इस तरह जीवन कब तक चलता रहेगा ?'

'जब तक जीवित हैं।'

'क्या तुम्हारा भेद नहीं खुल सकता ? पुलिस वाले तुम्हारी खोज कर रहे होंगे।'

'जरूर कर रहे होंगे पर अब मैं उनके चंगुल में नहीं आ सकता हूँ। क्या इन कपड़ों में मुझे कोई धीरज कह सकता है ?'

'कह तो नहीं सकता है पर पता लगाने वाले भी तो उड़ती चिड़िया के पर कतरा करते हैं। एक बात कहूँ। बुरा तो नहीं मानोगे !'

'बिल्कुल नहीं। कहो।'

'अगर तुम अँग्रेजों से माफी माँग लो तो वह तुम्हें छोड़ नहीं देंगे ?'

'नहीं। और यदि छोड़ भी देंगे तब भी मैं माफी माँगने नहीं जाऊँगा। अब इस जीवन में यह नहीं होने का। अँग्रेजों के गुलाम होकर रहने से तो मर जाना अच्छा है। मेरे गुरु का यही कहना है। अगर तुम्हें उनकी कहानी बताऊँ तो रो उठोगी। उन्होंने देश के लिए अपने

बच्चे, स्त्री, सम्पत्ति सब का त्याग कर दिया है। मैंने उनकी सौगन्ध खाकर उन्हीं के मार्ग पर चलने की प्रतिज्ञा की है। मैं इससे विमुख नहीं हो सकता। यह महान पाप होगा।'

थोड़ी देर के लिए वहाँ निस्तब्धता छा गई। रूनियाँ सोचने लगी। सम्भवतः उसके भावी जीवन का कल्पित भवन ढह गया था। उसके सारे अरमानों पर पानी फिर गया था। धीरज में ऐसा भी परिवर्तन आ सकता है—उसे स्वप्न में भी आशा नहीं थी। उसके अन्तर में एक विचित्र प्रकार की व्यथा होने लगी थी।

रूनियाँ के भावों को समझता हुआ धीरज बोला—'मैं तुम्हारे मन के विचारों को समझ रहा हूँ रूनो; परन्तु भाग्य में जो बदा है वह होकर ही रहेगा। न मुझे अपराधी बनाकर जेल में बन्द किया गया होता और न ये परिस्थितियाँ बनतीं। मैंने भी तुम्हें पाकर बड़ी-बड़ी कल्पना कर रखी थीं लेकिन······। खैर, जो भगवान करते हैं सब ठीक करते हैं। अब मैं तुम से इतना ही कह सकता हूँ कि यदि तुम्हें किसी दूसरे मनुष्य के साथ बन्धने की इच्छा हो तो बिना संकोच के ऐसा कर सकती हो। इसमें मुझे प्रसन्नता होगी। वैसे मेरा प्रेम जैसा पहले था वैसा जीवन के अन्त तक रहेगा। इसे तुम ध्रुव······।'

'चुप रहो', रूनियाँ ने डाँट बतलाई, 'हमें क्या करना है और क्या नहीं इसे हम अधिक जानते-समझते हैं। क्या जीवन में छोड़ने-करने के सिवा और कोई काम नहीं है? क्या हम तुम्हें जीवन भर अपने मन में नहीं रख सकते? बड़े आये प्रेम जताने वाले! अब तुम कब आओगे?' उसने प्रसंग बदल दिया।

'अगले सोमवार को। तुम मिलोगी?'

'यहीं आना पर अधिक रात गए पर। तब कुछ देर तुम्हारे पास बैठ भी सकती हूँ। यह टैम ठीक नहीं है।'

'अच्छी बात है, अब तुम जाओ।' उसने अपने हाथ ढीले कर दिये। रूनियाँ खड़ी हो गई। धीरज भी खड़ा हो गया, 'मेरे विषय में

तुम्हें बहुत सतर्कता बरतने की आवश्यकता होगी। मेरा मतलब समझ रही हो न?'

'तुम से अधिक। हम बुद्धू नहीं हैं।'

१०

गुरु गुड़ रहे और चेला चीनी हो गए। धीरज ने अपनी कार्य-क्षमता का ऐसा परिचय दिया कि चारों ओर हंगामा उठ खड़ा हुआ। धीरज, धीरज पंडित के नाम से सबकी जबान पर रटे जाने लगे। गाँव-गाँव और घर-घर में धीरज पंडित की चर्चा होने लगी। रोज सुनने में आता—अमुक थाने के पुलिस इंस्पेक्टर साहब उड़ा दिए गये तो किसी गाँव का देशद्रोही जालिम जमींदार मार डाला गया, तो किसी पुलिस के दलाल के हाथ-पैर तोड़ डाले गए, तो कहीं कलेक्टर साहब की मोटर पर गोलियाँ चलाई गईं। तात्पर्य यह कि जो कुछ भी हो रहा था उन सबके साथ धीरज पंडित का नाम ही जुड़ा होता था।

धीरज पंडित के आतंक ने पुलिस की सारी हेकड़ी मिट्टी में मिला रखी थी। सब तरह की कोशिशें करने पर भी धीरज पंडित अभी तक उनके हाथों में नहीं आ सका था और जैसी स्थिति थी उससे यही अनुमान लगाया जा रहा था कि उसे पकड़ना बाघ के मुँह में हाथ डालना था। लखनऊ सरकार की चिन्ता बढ़ गई थी। गवर्नर महोदय के पास आए दिन गवर्नर जनरल के डाँट-डपट वाले पत्र आने लगे थे। बेचारा गवर्नर बड़ी परेशानी में था। अन्त में उसके आदेशानुसार प्रबन्ध में उलट-फेर किया गया। पुलिस की संख्या बढ़ाई गई और शीघ्र से शीघ्र धीरज पंडित को बन्दी बनाने का हुक्म हुआ।

यद्यपि गोरों ने सैंकड़ों गाँवों को जलाकर हजारों को मौत के घाट

उतार कर एवं लाखों को जेल में ठूंसकर देश में शान्ति और व्यवस्था स्थापित कर ली थी फिर भी आश्चर्य की बात थी कि धीरज अभी तक बन्दी नहीं बनाया जा सका था। पुलिस विभाग के लिए दिन प्रतिदिन यह समस्या अधिक जटिल होती चली जा रही थी। बड़ी बदनामी थी।

कुछ मास और बीते। धीरज गिरफ्तार नहीं हुआ। सरकार ने दूसरी नीति अपनाई। धीरज पंडित के पकड़ने वाले को एक हज़ार का पुरस्कार घोषित हुआ। धीरज नहीं पकड़ा गया। पुरस्कार पाँच हज़ार का हो गया। धीरज अब भी बन्दी नहीं बनाया जा सका। उसके कार्यों में और तेजी आ गई थी। जमींदारों और देशद्रोही तत्वों की कंपकंपी बढ़ गई थी। किसान मन ही मन धीरज की रक्षा-हेतु ईश्वर से विनती करने लगे थे। देशभक्त फूले नहीं समा रहे थे। धीरज पंडित ने देश भर में एक अजीब सनसनी पैदा कर दी थी। उसकी ख्याति फैल गई थी। समाचार पत्रों की बिक्री बढ़ गई थी।

एक दिन की घटना है। धीरज चमारों के किसी पुरवा में गया हुआ था। सुनने में आया था कि जिस मुंशी जी की वह जमींदारी थी वह चमारों को बहुत परेशान किया करते थे। मुंशी जी भी पक्के मुंशी थे। पता नहीं उन्हें किस प्रकार धीरज के आने की भनक लग गई। उन्होंने तत्काल पुलिस को खबर करवाई। आनन-फानन में पुलिस की लारी वहाँ आ धमकी। बेचारे पुरवा वाले भौंचक्के रह गये। क्षणभर के लिये धीरज भी चिन्तित हो उठा। परन्तु उसने अपने को संभाला। जिस घर में बैठा वह लोगों से बातें कर रहा था; उन्हें ढाढ़स देते हुये बाहर जाने के लिये कहा। उसने विश्वास दिलाया कि धीरज को पकड़ने वाला अभी जन्मा नहीं है। सब बाहर चले गये।

धीरज ने झटपट कपड़े उतारे और उन्हें बगल में दबाते हुये पिछवाड़े जा पहुँचा। वहाँ पुरवा के सारे सूअर बजबजाते खोभार में एक दूसरे पर लेटे हुये उलट-पुलट रहे थे। धीरज उन्हीं के बीच घुसकर स्वयं सूअर बन गया। केवल नाक और आँखों को छोड़ कर सम्पूर्ण शरीर कीचड़ में धंस गया था। उसने कपड़े नीचे धंसा दिये थे।

पुलिस ने पुरवा घेर लिया और फिर एक-एक घर की तलाशी शुरू की। एक-एक घर और घर की एक-एक कोठरी छान डाली गई पर धीरज न मिला। लोगों से पूछा-जाँचा गया, उन्हें धमकाया गया और मुंशीजी के संकेत पर दो-चार की मरम्मत भी हुई; किन्तु सब बेकार रहा। वे भला क्यों बताने लगे? धीरज तो उनके लिये प्राणों से भी अधिक प्रिय था। निराश होकर पुलिस को लौटना पड़ा। चलते समय दारोगा जी ने मुंशी को डाँट बतलाई और हिदायत दी कि भविष्य में सोच-समझ कर सूचना दिया करें। मुंशी जी अपनी ग़लती पर गिड़-गिड़ाते रहे। लारी लौट गई।

रात ढल जाने पर धीरज खोभार से निकला। जिसे जगाना चाहिये, उसे जगाया। स्नान किया। उसी के कपड़े पहने और कुछ समय तक बातें करने के उपरान्त प्रस्थान किया। सीधे मुंशी जी के घर पहुँचा। मुंशी जी बाहर सहन में खर्राटे भर रहे थे। उसने मुंशी जी को जगाया। मुंशी जी उठे पर सामने पिस्तौल तना देख कर पुनः खाट पर गिर पड़े। धीरज ने कान पकड़ कर उठाया और उनकी नाक को हिलाते हुये बोला, 'इस बार तुम्हें चेतावनी दे रहा हूँ। अगर भविष्य में अपने को सुधारोगे नहीं तो जान से हाथ धोनी पड़ेगी। तुम मुझे पहचान रहे हो न? मेरा ही नाम धीरज पंडित है।'

मुंशीजी की घिघ्घी बंध गई थी। उन्होंने हाथ जोड़े, कान पकड़े और रूआसे शब्दों में बोले, 'अपनी ग़लती के लिये माफी चाहता हूँ पंडित जी। दुबारा ऐसी ग़लती······।'

यह तुम्हारे सोचने की चीज है। मैंने इस बार छोड़ दिया है। आगे तुम जानो।' धीरज मुड़ गया।

दूसरे दिन पत्रों में लोग उछल-उछल कर समाचार पढ़ रहे थे। धीरज पंडित की चतुराई और साहस पर शाबासी दे रहे थे।

× × ×

रात सुहानी थी। चाँद आकाश में चमक रहा था। भिखारी बाबा के बरगद से चाँदनी छन-छन कर मानों नीचे किसी काली चादर पर सफेद रंग भर रही थी—छींटनुमा बना रही थी। हवा में गुदगुदी थी। बड़ा अच्छा लग रहा था। रात अधिक बीत चुकी थी। रूनियाँ बरगद के सहारे लेटी अपने प्रिय की प्रतीक्षा कर रही थी। कुछ समय बाद दूर चाँदनी में कोई आकृति झलकी। रूनियाँ झट से बरगद पर चढ़ गई। धीरज आया। साईकिल खड़ी की और इधर-उधर देखता हुआ बैठ गया। सोचा—आ रही होगी। पाँच-सात मिनट बीते। धीरज उठकर टहलने लगा। उसने सोचा—सम्भव है वह सीवान में बैठी हो पर पुनः विचार आया—अकेले वहाँ वह नहीं बैठ सकती। वह उसी प्रकार टहलता रहा। तब तक धम से कूदने की आवाज हुई। धीरज का हाथ पिस्तौल पर पहुँच गया।

रूनियाँ हंस पड़ी, 'डर गये न ? क्या बतायें हम मर्द नहीं हुये वरना चुटकी बजाकर तुम्हें पकड़ लेते ?' वह समीप आ गई।

धीरज ने उसे अपनी भुजाओं में खींच लिया और उसके कपोलों को चूमता हुआ धीरे से बोला, 'यह तुम अब भी कर सकती हो। मर्द बनने की क्या आवश्यकता है ? बैठो।'

दोनों बैठ गये। रूनियाँ बोली, 'तुम्हारी खोभार वाली कहानी की गाँव में बड़ी चर्चा है। तुम तो अपने कामों से अमर हो गये। गाँव मिट जायेगा पर तुम्हारा नाम नहीं मिटेगा। मेरे जैसा भाग किसका होगा ? दुनियाँ में जिसका डंका बजा हो वह मेरा कहलाता है। उस दिन की पूरी कहानी तो सुनाओ।'

धीरज उसकी ओर देखता रहा। वह चुप था।

'मुझे क्या देख रहे हो ?'

'कुछ नहीं।'

'कुछ तो। बताओ न।'

धीरज ने धीरे से उसे अपनी जाँघ पर लिटा लिया और कहानी सुनाने लगा। रूनियाँ बड़ी तन्मयता के साथ सुनती रही। कहानी समाप्त होने पर बोली, 'तुम ने पुलिस वालों को अच्छा बुद्धू बनाया ?'

'समय की बात है, बुद्धि काम कर गई; अन्यथा इस समय मैं कहीं और होता। लेकिन यह तो निश्चित है रून्नो कि अब मैं बहुत दिनों तक अपने को पुलिस वालों से बचा नहीं सकता। इन लोगों ने जनता के साथ बड़ा कठोर व्यवहार करना आरम्भ कर दिया है। कोई कब तक सहन कर सकता है ? अपनी जान सबको प्यारी होती है।'

'फिर·········?'

'फिर यही कि मेरे लिये तुम क्यों अपना जीवन नष्ट कर रही हो ? मैं जो कुछ भी कर रहा हूँ यह समझ कर, कर रहा हूँ कि एक न एक दिन फाँसी या डामिल होनी ही है पर······।'

'और हम,' रूनियाँ बीच में बोल उठी, 'यह समझकर साथ लगे हुये हैं कि किसी की फाँसी डामिल के बाद अपनी भी फाँसी डामिल हो जायेगी। धीरज पंडित, अब वह पहले वाली रूनियाँ नहीं रह गई है। जब तुम देश के लिये जान दे सकते हो तो क्या हम तुम्हारे लिए जान नहीं दे सकते हैं ? आगे ऐसी बात मत करना।' उसने करवट बदल ली।

'लेकिन इस हठ में तुक क्या है ?'

'तुक कुछ नहीं है। तुक तो तुम्हें छोड़ कर किसी दूसरे से ब्याह करने में है क्यों ? चलो, तुम्हारी बात हम माने लेते हैं पर हमारी सौगन्ध खाकर कहना कि क्या ऐसा करने से तुम्हारे मन को चोट नहीं पहुँचेगी ?' रूनियाँ ने नब्ज पकड़ ली थी।

धीरज को सोचना पड़ गया। रूनियाँ के कथन में सत्यता थी। वह उत्तर देने में विवश था।

'अब बोलते क्यों नहीं ? चुप क्यों हो गये ?'

धीरज को हार स्वीकार करनी पड़ी। वह झूठी सौगन्ध नहीं खा सकता था। रूनियाँ के बिलगाव से उसे अवश्य पीड़ा पहुँचेगी। रूनियाँ

करवट बदल कर हँसने लगी।

'अब मैं,' धीरज ने कहा, 'एक मास बाद इधर आ सकूँगा।'

'क्यों ?'

'चित्रकूट जाना है। गुरुजी का संदेश आया है।'

'कब जा रहे हो ?'

'सम्भवत: परसों चला जाऊँगा।'

'हम भी तुम्हारे साथ चलें ?'

'नेकी और पूछ-पूछ। स्त्री-पुरुष के मिलन में जिस स्वतन्त्रता की आवश्यकता है वह अभी मिल कहाँ सकी है ? उसकी पूर्ति तो ऐसे ही हो सकती है न ?'

रूनियाँ ने आँखे बन्द कर लीं, 'चलो हटो।'

११

लगभग एक मास बाद धीरज चित्रकूट से लौटा। दो दिन बनारस रुका और तीसरे दिन पुलिस की वर्दी में साफा बांधे हुये परसाँ को चल पड़ा। रूनियाँ से मिलने के लिये यही एक सरल उपाय था। संध्या हो जाने पर वह गाँव में आया और सीधे रूनियाँ के दरवाजे जा खड़ा हुआ। रूनियाँ का बाप बाहर खटोली डाले हुक्का पी रहा था। पुलिस को देखते ही हड़बड़ा कर उठ खड़ा हुआ। धीरज ने पूछा, 'तुम्हारा नाम जगनू है ?'

काँपते हुये जगनू ने उत्तर दिया, 'हाँ सरकार।'

'तुम्हारी कोई लड़की रूनियाँ नाम की है ?'

'हाँ सरकार।'

'बुलाओ।'

काँपता हुआ जगनू तनिक ठिठका। वह कारण सोचने लगा था। पुलिस वालों को रूनियाँ से क्या मतलब ?

धीरज ने तनिक डपट कर कहा, 'बुलाते क्यों नहीं ? खबर है कि धीरज पंडित तुम्हारी लड़की से मिलने के लिये आया करता है। तुम सब फाँसी पर चढ़ा दिये जाओगे।'

'सरकार..........।' जगनू ने कुछ कहना चाहा।

धीरज ने बीच में टोक दिया 'पहले उसे बुलाओ।'

जगनू अन्दर गया और रूनियाँ को साथ लेकर बाहर आया। रूनियाँ के पीछे-पीछे उसकी माँ भी थी।

धीरज अपने हाथ की छड़ी घुमाता हुआ रोब के साथ दो कदम आगे बढ़ कर रूनियाँ के समीप जा खड़ा हुआ और उसे ध्यान से देखने लगा। उसने समीप जाकर रूनियाँ को पहचानने का अवसर दिया था। घबड़ाई हुई रूनियाँ के चेहरे पर भाव बदले। उसने भी ध्यान से देखा। धीरज पहचान में आ गया। उसने सिर झुका लिया। उसे मन ही मन हँसी आने लगी थी।

धीरज भी समझ गया, 'तुम्हारा ही नाम रूनियाँ है ?' उसने बनावटी क्रोध व्यक्त किया।

'हाँ।' रूनियाँ सिर झुकाये हुई थी। उसे हँसी आ रही थी।

'तुमसे धीरज पंडित मिलने आता है ?'

'मुझसे धीरज पंडित का क्या मतलब ? मुझसे मिलने क्यों आयेगा ?'

'झूठ बोलती है। बिल्कुल आता है। मेरे पास रिपोर्ट है। तुम उसे थाने पर हाजिर करो वरना तुम्हें भी जेल की हवा खानी पड़ेगी। समझ में आया तुम्हारे ? अब मैं जा रहा हूँ। तुम उसे थाने में जल्द से जल्द हाजिर करो।' धीरज मुड़कर चल दिया।

'जाओ, जाओ बड़े आये थाने वाले। जो करना हो सो कर लेना। बहुत देखे हैं पुलिस वाले।' रूनियाँ बड़बड़ाई और माँ का हाथ पकड़कर अन्दर चली गई।

पीछे-पीछे उसका बाबू भी गया। वह बहुत घबड़ाया हुआ था। उसे कुछ समझ में नहीं आ रहा था। भावी आपत्ति की कल्पना करके जान सूखी जा रही थी। वह आंगन में झुंझला कर बोला, 'रूनियाँ जो न कर दे। ऐसी औलाद से तो·········।' वह कहते-कहते रुक गया और माथा पकड़ कर बैठ गया।

रूनियाँ ने अपने भाव संकेतों द्वारा पिता को समझा दिया कि पुलिस वाला बदमाश था। उसकी नीयत अच्छी नहीं थी। वह धीरज के बहाने अपनी इच्छा की पूर्ति का रास्ता ढूंढ रहा था। जगनू को रूनियाँ की बात तुक की लगी। उसकी उलझन कुछ कम हुई। वह उठकर बाहर आया और पुनः अपनी खटोली पर बैठकर हुक्का गुड़गुड़ाने लगा।

रूनियाँ भी घर से बाहर निकली और गाँव का चक्कर लगाती हुई बरगद के नीचे जा पहुँची। धीरज वहाँ प्रतीक्षा कर रहा था। उसने आगे बढ़कर रूनियाँ को भुजाओं में आबद्ध कर लिया और फिर दोनों के अधर सट कर मिल गये। कुछ समय बाद रूनियाँ ने अपने को अलग किया और धीरे से पूछा, 'कब आये ?'

'परसों।' धीरज ने पुनः उसे अपनी भुजाओं में कस लिया।

'चलो उधर दूर सीवान में बैठेंगे।'

धीरज चल पड़ा और काफी दूर आकर दोनों एक जगह बैठ गये। रूनियाँ ने बात छेड़ी, 'बड़े तुम वैसे हो। घर भर को डरा दिया।'

'क्या करता, धीरज हंसता हुआ बोला, 'तुम्हें अपने आने की सूचना किस प्रकार देता ?'

'पहले तो हम भी डर गये थे; लेकिन जब तुम निकट आकर घूरने लगे तब हम समझ गये। बिल्कुल पहिचान में नहीं आ रहे थे।'

धीरज ने उसे अपनी गोद में लिटा लिया और टकटकी लगा कर निहारने लगा। दोनों प्रेमी प्रेम के सागर में बह चले। प्रकृति आनन्दमय हो उठी।

× × ×

धीरज पंडित पुनः अपने कार्य में जुट पड़ा था। जनता से सब प्रकार के सहयोग मिलने के कारण उसके कामों में अधिक तेजी आगई थी। नित्य नई-नई घटनायें सुनने में आने लगीं। सरकार की चिंता और बढ़ गई। पुनः सिपाहियों के तबादले हुये। नई तैनाती हुई। ऊपर-नीचे हर तरफ परिवर्तन किया गया; किन्तु अन्त का परिणाम ज्यों का त्यों रहा। सिपाही, थानेदार, एस० पी० और डी० एस० पी० सभी दौड़ते। न दिन को दिन समझते और न रात को रात। कभी भोजन मिला तो पानी नहीं और कभी पानी मिला तो भोजन नहीं, फिर भी धीरज उनके हाथ नहीं लगता। कब आया, कब चला गया, किधर चला गया, कैसे चला गया, रहस्य का रहस्य बना रह जाता। धीरज, देवकीनन्दन जी खत्री के उपन्यास 'चन्द्रकान्ता' का अय्यार हो गया था।

रूनियाँ से उनकी भेंट होती रहती। हफ्तों दौड़ धूप और अधिक परिश्रम के उपरान्त जब वह अपने में थकान का अनुभव करता तब रात को अवसर निकाल कर रूनियाँ से मिलने चला आता। उस घंटे दो घंटे के मिलन के उपरान्त ही उसे अनुभव होता कि उसके भीतर पहले जैसी पुनः शक्ति और स्फूर्ति आ गई है। वह जब-तब इस बात को रूनियाँ से भी कह दिया करता था। रूनियाँ मुँह बनाकर उसकी मुँह देखी प्रशंसा पर प्यार भरी झिड़कियाँ देती और उसे झूठा कहती थी किन्तु मन ही मन उसे गर्व का अनुभव होता था। वह अपने को महान सौभाग्यशालिनी समझती थी। उसे धीरज का सच्चा प्रेम मिल था। वह नित्य भगवान से विनती करती रहती कि कोई ऐसा अवसर आये जब वह अपने धीरज पर स्वयं को बलिदान कर सके।

असम्भव को सम्भव और सम्भव को असम्भव करने वाली शक्ति का अभी तक पता नहीं लग सका है; यद्यपि इसे खोज निकालने की चेष्टा आदिकाल से होती चली आ रही है और अब भी हो रही है। अलग-अलग दार्शनिक अपनी अलग-अलग दलीलें देते हैं किन्तु सर्वसम्मति से कोई निर्णय नहीं किया जा सका है। न हो, इसके लिये

विशेष चिन्ता नहीं है; किन्तु यह चिन्ता का विषय अवश्य है जिस व्यक्ति से देश, समाज और मानवता का हित हो रहा हो, जो सर्वप्रिय और सबके कल्याणार्थ सब कुछ कर रहा हो उसके कार्यों में बाधा पहुँचाकर उसकी इतिश्री क्यों कर दी जाती है ? धीरज जनता-जनार्दन का सेवक था, तन-मन-धन से सेवक था। सेवा के निमित्त ही उसने अपनी जिन्दगी की बाजी लगा दी थी। अपने समस्त सुखों और स्वार्थों की आहुति दे दी थी। फिर भी एक दिन उसी के एक विश्वासपात्र व्यक्ति ने उसे पुलिस के हवाले कर ही तो दिया।

पहले से निश्चित समय के अनुसार धीरज उस व्यक्ति के घर आया। उस मनुष्य ने पहले से पुलिस को सूचना दे रखी थी और गुप्त रूप से पुलिस ने वहाँ घेरा भी डाल दिया। धीरज और उसके बीच काफी देर तक वार्ता होती रही। तदुपरान्त दोनों भोजन पर बैठे। अभी धीरज ने दो-चार कौर मुंह में डाले होंगे कि पुलिस का छापा पड़ गया और निश्चित बैठा हुआ धीरज पकड़ लिया गया। वह हक्का-बक्का देखता रह गया और जब तक वह संभले उसकी मुश्कें कस दी गईं।

पुलिस वालों ने तलाशी ली। उन्हें पिस्तौल का भय था। धीरज मुसकराकर बोला, 'अमायार ! अगर वह टिपटिपऊवा होता तो तुम लोग हमें पकड़ पाते ?' उसने अपने साथी को घूरा, 'गद्दार ! इतना बड़ा विश्वासघात !! हरामज़ा······।' वह दाँत पीसने लगा।

पुलिस वाले उसे खींचते हुए बाहर ले गए।

अखबार वाले चिल्ला रहे थे—'धीरज पंडित गिरफ्तार। उनके साथी ने उनके साथ विश्वासघात किया······।'

तहलका मच गया। ग़रीब रो पड़ा और अमीर हंस पड़ा। परसाँ में समाचार पहुंचा। हमदर्द दुःख के सागर में डूब गए और बेदर्द खुशियों के गुलछर्रे उड़ाने लगे।

रूनियाँ खटोली पर पड़ी रात भर आँसू बहाती रही। कब क्या हो सकता है—कहना कठिन है।

१२

धीरज पंडित पर कत्ल, डाके, राहज़नी और चोरी आदि के सैंकड़ों मुकदमे आयद किए गए। फिर तारीख पड़ी और न्यायालय में मुकदमा शुरू हुआ। तारीखें पड़ती रहीं। मुकदमा चलता रहा, तारीख के दिन हजारों की भीड़ कचहरी में इकट्ठा हुआ करती। उस दिन सारे शहर में एक विशेष प्रकार की सतर्कता फैली रहती। सभी उत्सुक रहते।

गाँव में रूनियाँ लोगों को आपस में बातें करते हुए सुना करती। कोई कहता—फाँसी हो जाएगी तो कोई डामिल की बात कहता। कुछ जो पुराने मुकदमेबाज़ थे उनकी राय कुछ और थी। उनके मतानुसार धीरज को दस-बारह वर्ष की सज़ा हो सकती थी। रूनियाँ सब सुनती और रात-रात भर आँसू बहाया करती। इसके अतिरिक्त और वह कर ही क्या सकती थी ? यद्यपि जब तब उसके मन में बनारस जाने का विचार उठता था। वह तारीख के दिन कचहरी में जाकर धीरज से मिलने का मन्सूबा बाँधती थी पर मन्सूबा बाँधने में और उसे कार्यरूप में परिणित करने में ज़मीन-आसमान का अन्तर था। रूनियाँ के लिए असाधारण काम था। वह नहीं कर सकती थी और वास्तविकता भी यही थी। मुकदमा चलते लगभग छः मास बीत चुके थे। सैंकड़ों तारीखें पड़ चुकी थीं; परन्तु रूनियाँ का अभी तक बनारस जाना नहीं हो सका था। कैसे हो सकता था ?

महीने-दो-महीने और बीते। एक दिन स्त्रियों का कोई त्योहार था। परसाँ से बहुत-सी युवतियाँ और रूनियाँ की सहेलियाँ गंगाजी नहाने बनारस जा रही थीं। अनायास, पता नहीं क्या सोचकर रूनियाँ भी

तैयार हो गई। उसने अपनी माई से अनुमति ली और सहेलियों के संग गङ्गा नहाने चल पड़ी। स्त्रियों का झुंड नाना प्रकार के गीत गाता हुआ, आपस में ठिठोलियाँ करता हुआ अपने स्वस्थ यौवन का नवीन आकर्षण फैलाता हुआ बनारस पहुँच गया। यद्यपि दिखावे के लिए रूनियाँ भी सबके संग हंसती-खेलती चली आई थी; परन्तु उसका मन कहीं और था। मस्तिष्क कुछ और सोच रहा था।

स्नान के उपरान्त स्त्रियों का यह झुंड बाबा विश्वनाथ के दर्शनार्थ चल पड़ा। बाबा की पतली गली में घुसते ही भीड़ के रेले और शोहदे-बदमाशों की बेजा हरकतों के कारण एक-दूसरे का संग छूट गया। रूनियाँ को अवसर मिल गया। वह लौट पड़ी। शीघ्रता से सड़क पर आकर रिक्शा किया और उसे कचहरी चलने को कहा। रिक्शा वाला उड़ चला।

रिक्शा वाला घंटी घनघनाता, दायें-बायें काटता और मार्ग में अपने साथी रिक्शेवालों पर आवाजें कसता मस्ती में चला जा रहा था, पर रूनियाँ का हृदय इस समय किसी अज्ञात भय के कारण काँपने लगा था। उसे डर लगने लगा था कि कहीं उसका आदमी न मिल जाय। और यही हुआ भी। अचानक सामने से वह आता हुआ दिखलाई पड़ ही तो गया। रूनियाँ की आधी जान निकल गई। छाती धक-धक करने लगी। उसने जल्दी से घूंघट खींच कर आगे किया और बिल्कुल रिक्शे वाले के पीछे हो गई। किन्तु सौभाग्य की बात, उसका पति आगे वाली गली से ही मुड़ चुका था। रूनियाँ ने मुँह का पसीना पोंछा और संतोष की साँसें लीं।

कचहरी आ गई। रिक्शा वाले ने फाटक के पास रिक्शा रोक दी। रूनियाँ ने पूछा, 'यही कचहरी है?'

'हाँ।'

'कितने पैसे हुए?'

'छः आने।'

रूनियाँ ने उसे पैसे थमा दिये और धीरे-धीरे फाटक से होती अन्दर को चल पड़ी। धीरज की आज तारीख थी; इसकी जानकारी उसे पहले से थी। और इसी जानकारी के बल पर वह बनारस आई थी तथा कचहरी में आकर धीरज से भेंट करने का दुस्साहस किया था। लेकिन अब जब वह किसी प्रकार कचहरी में आकर खड़ी हुई थी तो पैर आगे बढ़ने से जवाब देने लगे थे। उसकी हिम्मत पस्त पड़ने लगी थी। उसे अब ध्यान में आया था कि वहाँ रामगुलाम महाराज भी तो होंगे। वह सड़क से हटकर एक किनारे खड़ी हो गई और विचार करने लगी इस समस्या की गंभीरता पर। 'लगी नाही छूटे राम चाहे जिया जाय' वाली हालत तो बड़ी विचित्र हालत होती है न।

थोड़ी ही देर में रूनियाँ की बुद्धि ने रास्ता निकाल लिया। समस्या सुलझ गई। वह मन ही मन प्रसन्न होती हुई चल पड़ी। आगे एक व्यक्ति से उसने धीरज वाले इजलास की जानकारी की। उन्होंने सामने भीड़ की ओर उंगली से संकेत करते हुये कहा—'वहाँ जाओ।'

बड़ा जमाव था और बड़ी पुलिस थी। रूनियाँ का हृदय बैठ गया। आशा निराशा में परिवर्तित हो गई। धीरज से मिलना तो दूर दर्शन पाना भी उसे असम्भव प्रतीत होने लगा। उसका मन रुआसां हो आया और बहुत रोकने पर भी नेत्रों से आँसू बरबस निकल ही पड़े। उसने आँसुओं को पोंछा और रामगुलाम को ढूंढने लगी। उसके अन्तर में कोई चीज बिंधने लगी थी। छलनी करने लगी थी।

रामगुलाम मिल गये। उन्होंने रूनियाँ को देखते ही पूछा, 'तुम यहाँ कैसे?'

'गंगा नहाने आये थे चाचा। वहाँ से सब लोग बाबा के दर्शन करने गये। भीड़ में साथ छूट गया। बहुत देर तक बाहट जोहने पर भी जब उन लोगों से भेंट न हो सकी तो हम यहाँ चले आये।'

'तुम देर से ढूंढ रही हो?'

'नहीं। अभी-अभी आये हैं।'

'चलो, बाबा की कृपा रही । नहीं इस जमाव में……।'

'धीरज पंडित कहाँ है चाचा ?'

'इजलास के अन्दर ।'

'क्या हम उन्हें देख नहीं सकते हैं ?'

'कठिन है । जैसी भीड़ बाहर देख रही हो वैसी ही अन्दर इजलास में है । तिल रखने तक का स्थान नहीं है ।'

रूनियाँ क्षण भर तक मौन एकत्रित जनसमूह की ओर देखती रही फिर बोली, 'ये सब लोग उन्हीं को देखने के लिए खड़े हैं न ?'

रामगुलाम ने सिर हिलाया ।

'चलो चाचा हम भी देखेंगे,' उसने बच्चों की भाँति रामगुलाम की उंगली पकड़ ली, 'भीड़-वीड़ की कोई चिन्ता नहीं ।'

रामगुलाम चल पड़े किन्तु इजलास के दरवाजे पर आकर दोनों को रुक जाना पड़ा । वास्तव में कमरे के अन्दर तिल रखने की जगह नहीं थी । दरवाजे तक लोग भरे हुये थे । रूनियाँ के लिए भीतर जाना असम्भव था । 'देखा तुमने,' रामगुलाम ने कहा 'अन्दर कैसे जा सकती हो ?'

दरवाजे से एक तरफ हटते हुए रूनियाँ ने पूछा, 'धीरज पंडित इसके अन्दर कब तक रहेंगे चाचा ?'

'चार-पाँच बजे तक ।'

'फिर ?'

'फिर उस मोटर के अन्दर,' उन्होंने बरामदे से लगी पुलिस लारी की ओर संकेत किया, 'बैठकर जेल चले जायेंगे ।'

'अभी क्या समय होगा ?'

'बस थोड़ी देर में इजलास खतम होने वाला है ।'

'तो ठीक है । यहीं खड़े रहेंगे । जब वह निकलेंगे तो देख लेंगे ।'

रामगुलाम ने कोई उत्तर नहीं दिया । मौन खड़े रहे ।

साढ़े चार बजे कोर्ट उठ गई । तत्काल बन्दूकधारी सिपाहियों ने

इजलास के भीतर प्रवेश करके लोगों को बाहर जाने का आदेश दिया । सब बाहर निकल गये । दरवाजे से लेकर लारी तक दोनों ओर पुलिस खड़ी हो गई । स्त्री जाति का रूनियाँ ने लाभ उठाया । वह जहाँ खड़ी थी वहीं खड़ी रही । पुलिस वालों ने उसे हटाया नहीं ।

चार-पाँच संगीनधारी सिपाहियों के घेरे में धीरज कटघरे से उतरा और बाहर निकला । दरवाजे पर पहुँचते ही जो उसकी दृष्टि बाँयी ओर गई तो वह एकदम रुक गया, 'रूनो ।' उसके मुँह से निकला ।

रूनियाँ अपने आँसुओं को न रोक सकी । वह रो उठी ।

धीरज ने अपने को संभाला, 'पगली रोती है । गाँव में सब लोगों से प्रणाम कहना । मैं बहुत जल्दी छूट कर आऊँगा ।' वह आगे बढ़ गया ।

रूनियाँ फफक उठी । रामगुलाम ने आकर उसका हाथ पकड़ा और उसे लेकर चल दिये ।

लारी के चारों ओर खड़ी जनता नारे लगा रही थी, 'धीरज पंडित जिन्दाबाद; धीरज पंडित जिन्दाबाद; भारत माता जिन्दाबाद ।'

× × ×

सारी गवाहियाँ गुजर गईं, जिरह हो गई और बहस भी हो गई । अन्त में एक तारीख को न्यायाधीश ने फैसला सुना दिया । धीरज पंडित को दस साल की सख्त सजा हुई—डाकेजनी, राहजनी और जेल से भागने के अपराध में । कत्ल के मुकदमे साबित न हो सके । पुलिस इसमें नाकामयाब रही ।

रूनियाँ पर पहाड़ गिर पड़ा ।

१३

यद्यपि अँग्रेजों ने अपने बमों और गोलियों के दम पर सारे हिन्दुस्तान में व्यवस्था स्थापित कर ली थी; किन्तु विश्व युद्ध के कारण उनका आर्थिक ढाँचा बड़ा जर्जर हो गया था। वे भीतर से बिल्कुल खोखले हो चुके थे। इंग्लैंड की जनता ने अपने सुख और शान्ति के हेतु सरकार को बदलना उचित समझा। चुनाव आया। चर्चिल सरकार धड़ाम हो गई। मज़दूर पार्टी शक्ति में आई। एटली महोदय प्रधान मन्त्री बने। फिर क्या था? परिवर्तन का नया रूप देखने को मिला। उन्होंने दूसरी नीति का पालन किया। लड़ाई-झगड़े के स्थान पर मित्रता की भावना फैली। भारत के साथ विशेष रूप से सहृदयता दिखलाई गई। यहाँ के नेताओं से सुलह की बातचीत होने लगी। गवर्नर जनरल माउण्ट बेटन प्रतिनिधि के रूप में अँग्रेजी सरकार की ओर से वार्ता करने लगे। उनकी मेहनत सफ़ल हुई। अन्तरिम सरकार की घोषणा हुई। पंडित जवाहरलाल नेहरू, प्रधानमन्त्री घोषित हुये और शीघ्र ही १५ अगस्त, १९४७ ई० को भारत के चप्पे-चप्पे से यह आवाज़ सुनने को मिली—स्वतंत्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है और हम स्वतंत्र हैं। युगों से भारत माता की जकड़ी हुई जंजीरों को तोड़ने के लिये जिन नर-नारियों ने प्राणों की बलि दे दी थी, उनकी लालसा पूर्ण हुई। उनकी आत्मायें संतुष्ट हुईं। देश के एक कोने से दूसरे कोने तक एक नवीन चेतना की एक नवीन लहर दौड़ गई।

ऐसे ही शुभ अवसर पर एक दिन समाचार पत्रों में लोगों ने धीरज पंडित के छूटने की खबर पढ़ी। प्रसन्नता की लहर फैल गई। उक्त तिथि

पर हजारों की संख्या में जनता जेल के फाटक पर आ खड़ी हुई। धीरज पंडित बड़े सम्मानपूर्वक बाहर लाये गये। जयजयकार होने लगी और फूल-मालाओं से उन्हें भर दिया गया। संध्या समय एक बड़ी सभा हुई जिसमें लाखों की संख्या में लोग उसे देखने आये। फिर हफ्तों नगर में उसका स्वागत-सत्कार होता रहा। धीरज अब नेता हो गया था।

यहां से फ़ुर्सत मिलने पर धीरज ने परसाँ को प्रस्थान किया। आने की सूचना उसने पहले दे दी थी। सैंकड़ों किसान उसे स्टेशन पर लेने आए थे। उनमें धीरज के श्वसुर रामगुलाम महाराज भी थे। धीरज ने गाड़ी से उतरते ही अपने श्वसुर के पैर छुए। वृद्ध गले से लिपटाकर रोने लगा।

परसाँ में एक अनोखा वातावरण फैला हुआ था। दरवाजे पर बीस-पच्चीस लोग धीरज को घेरे हुए बैठे थे। दो-चार आ रहे थे और दो-चार जा रहे थे। बड़ी मुश्किल से धीरज को नहाने और खाने की फ़ुर्सत मिली। तदुपरान्त फिर वही जमघट। यद्यपि स्टेशन पर ही गाँव का कुशल-क्षेम पूछते समय धीरज ने बड़ी चतुराई से रूनियाँ के विषय में जानकारी प्राप्त कर ली थी और यह सुनकर मन में सन्तोष मिला था कि वह अच्छी तरह है। लेकिन दिन भर का समय निकल जाने पर भी जब वह उधर से आती-जाती दिखलाई नहीं पड़ी तो धीरज को चिन्ता होने लगी। कारण का वह अनुमान नहीं लगा पा रहा था। जैसे-तैसे संध्या हुई। जमघट में कमी आई। तब भी पाँच-सात बैठे थे। भोजन का समय आया। धीरज ने सब को जाने के लिए कहा। सब चले गए।

रात के सन्नाटे में धीरज भिखारी बाबा वाले बरगद के नीचे रूनियाँ की प्रतीक्षा करने लगा। उसे विश्वास था कि रूनियाँ उससे मिलने यहाँ अवश्य आएगी। काफी समय बीत गया। रूनियाँ नहीं आई। धीरज बैठा रहा। उसने निर्णय कर रखा था कि जब तक वह आयेगी नहीं वह वहां से उठेगा नहीं।

थोड़ी देर बाद सामने आम के बाग में पत्तियाँ खड़खड़ाईं। धीरज

ध्यानपूर्वक देखने लगा। किसी की आकृति हिलती नजर आई। कुछ समीप आने पर वह आकृति वस्त्रों से ढकी हुई किसी स्त्री की प्रतीत हुई। धीरज का मन खिल उठा। रूनियाँ के अतिरिक्त और कौन हो सकता था? आकृति और समीप आई। वह रूनियाँ की ही थी। धीरज उठ कर खड़ा हो गया और धीरे-धीरे उधर को बढ़ा। दोनों एक-दूसरे के समीप आ गए। धीरज ने बढ़कर उसे अंक में भर लिया। रूनियाँ उसके सीने से चिपट कर सिसकने लगी।

कुछ समय उपरान्त जब दोनों बैठकर एक दूसरे को निहारने लगे तो धीरज के नेत्रों से टप-टप करके आँसू गिर पड़े। उसके मुँह से निकला—'तुमने मेरे लिए बहुत दुःख उठाया रूनो!' रूनियाँ शोक में सूखकर काँटा हो गई थी।

'तभी तो आज यह सुख देखने को मिला है', उसने अपने आँचल से धीरज की आँखें पोंछी, 'छिः, इसमें रोने की क्या बात है? देखना अब महीने भर में फूल कर कुप्पा हो जाऊँगी।' वह तनिक मुसकराई, 'सुना, आज दिन भर तुम्हें दम मारने की फुर्सत नहीं मिली।'

धीरज ने सिर हिलाकर 'हाँ' कहा।

'तो अब हम भी तुम्हें घन्टे-आध-घन्टे दम मारने की फुर्सत नहीं देंगे। जब से पकड़े गए हो और आज तक की सारी कहानी सुनेंगे और एक-एक करके सुनेंगे, चलो सुनाओ।'

धीरज ने दूसरी बात चलाई, 'मैं कल तुम्हारे बाबू से मिलकर विवाह की बात चलाऊँगा, ठीक है?'

जैसे लड़कियों को कहना चाहिए उसी प्रकार रूनियाँ ने भी कह दिया, 'हमें क्या मालूम? अभी कोई जल्दी तो है नहीं। फिर बात कर लेना।'

'नहीं! जल्दी है। अब इस प्रकार मिलना-जुलना गलत है। तुम्हें भी अब बहुत डरने की आवश्यकता नहीं। लोग विरोध तो करेंगे ही।'

'इसकी हमें तनिक भी चिन्ता नहीं है।'

'तो ठीक है। कल दोपहर में आऊँगा। तुम घर ही में रहना।'

'क्यों? अकेले में डर लगता है!'

'हाँ। अब अकेले में डर लगने लगा है।' वह हंसने लगा और धीरे से उसे अपनी गोद में खींचकर उसके अधरों को चूम लिया।

रात सुहावनी बन गई थी, हवा गुदगुदाने लगी थी और वातावरण आनन्द से ओतप्रोत हो उठा था।

१४

दूसरे दिन दोपहर में धीरज ने रूनियाँ के बाबू के सामने अपना प्रस्ताव रखा। जगनू महान आश्चर्य से आँखें फाड़कर देखता हुआ बोला, 'क्या कह रहे हैं धीरज महाराज?'

'ऐसा ही है काका! हम दोनों ने एक-दूसरे को बहुत दिनों से वचन दे रखा है। मैं रूनियाँ से प्रेम करता हूँ।'

'महाराज आप तो गजब कर रहे हैं। कभी ऐसा भी हुआ है? कुछ सोचिए तो सही।' जगनू को अब भी अपने कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था।

'मैंने सब सोचकर ऐसा प्रस्ताव रखा है काका। आपको किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिए।

'सन्देह तो नहीं है लेकिन......मैं क्या कहूँ? मेरा मतलब है, इस से गाँव-भर की नाक कटेगी धीरज महाराज। आपकी जात-बिरादरी में आपका खाना-पीना बन्द हो जायेगा। आप कुजात हो जायेंगे।'

'मैं इसे भली-भाँति समझता हूँ। इसकी मुझे चिंता नहीं है।'

'फिर भी।'

'अब रूनियाँ मुझसे अलग नहीं रह सकती काका।'

जगनू सिर थाम कर सोचने लगा और कुछ देर बाद बोला, 'आप ने रामगुलाम महाराज से यह चर्चा चलाई थी ?'

'नहीं।'

'क्यों ?'

'कोई आवश्यकता नहीं समझी है। मैं रूनियाँ को लेकर बनारस चला जाऊँगा और वहीं आर्यसमाज रीति से उसके संग विवाह कर लूँगा।'

'रामगुलाम महाराज से सारे सम्बन्ध तोड़ लीजियेगा ?'

'अगर रूनियाँ को अपनी लड़की मानने में उन्हें आपत्ति होगी तो तोड़ना ही पड़ेगा।'

'पर यह काम ठीक नहीं है महाराज। इसमें मेरी भी तो बदनामी है। आप तनिक ठण्डी बुद्धि से सोचें तो सही, यह अनर्थ है।' जगनू भीतर ही भीतर जल रहा था पर धीरज के डर के कारण अपने क्रोध को व्यक्त करने में असमर्थ था।

'अनर्थ-वनर्थ कुछ नहीं काका। यह सब तुम लोगों के समझने का फेर है। न तो रूनियाँ नासमझ है और न मैं। शादी-विवाह मन पटे की बात होती है। जात-पात कैसा ? अर्जुन ने कृष्ण की बहिन के साथ विवाह नहीं किया था ? भगवान के घर से सब एक बनकर आये हैं।'

'सो तो ठीक है महाराज; लेकिन दुनियाँ की रीति का निर्वाह करना जरूरी है न। बड़ों की बात और होती है। उँगली तो छोटे लोगों पर उठाई जाती है। हरामजादी रूनियाँ तो बेसवा से भी बढ़ गई। कुल-कलंकनी। पैदा होते ही गला घोंट दिया होता तो यह दिन देखने को क्यों मिलता ?' जगनू अपने क्रोध को कहाँ तक दबा सकता था।

जगनू के क्रोध को समझते हुये भी धीरज ने अपनी बात कही, 'क्रोध करने से कोई लाभ नहीं है काका। रूनियाँ जैसी लड़की दस-पाँच गाँवों में मिलना कठिन है। तुम्हें ऐसी बातें उसके लिये नहीं

कहनी चाहियें। इस काम को हँसी-खुशी से होने दो। यही उत्तम है।'

'नहीं' और 'हाँ' दोनों कहने में जगनू असमर्थ था वह सिर नवाकर सोचने लगा।

धीरज खड़ा हो गया, 'अब मैं जा रहा हूँ। फिर आऊँगा।' वह जगनू को कुछ कहने का अवसर दिये बिना बाहर चला गया।

धीरज ने घर आकर अपने श्वसुर के सामने अपने विचार रखे। रामगुलाम सुनते ही आपे से बाहर हो गये और लगे नये बछड़े की भाँति छान-पगही तोड़ाने। धीरज ने समझाने का प्रयत्न किया। रामगुलाम का क्रोध और भड़क गया। अंड-बंड बकने लगे और काफी देर तक बकते रहे। जब सब कुछ कह चुके, तो धीरज बोला, 'यह विवाह तो होकर ही रहेगा बाबू। संसार की कोई शक्ति इसे रोक नहीं सकती।' उसके शब्दों में कठोरता थी।

'तो सुन लो। तुम्हारा भी इस घर से कोई सम्बन्ध नहीं रहा।'

'मुझे स्वीकार है बाबू। मैं कल चला जाऊँगा।'

वृद्ध रामगुलाम के क्रोध ने अपनी सीमा का उल्लंघन कर दिया। वह चिल्लाकर बोले, 'कल नहीं। अभी। इसी समय जाना होगा।'

'देखा जायेगा।' धीरज उठकर चला गया।

तत्काल उसने गाँव भर को इकट्ठा किया और सबके सामने अपनी बात रखी। सभी नाक-भौंह सिकोड़ने लगे। सिकोड़ने वाली बात थी। एक ने कहा, 'यह असम्भव है। ऐसा नहीं हो सकता।'

'यह होगा मंहगू काका' धीरज के स्वर में गंभीरता थी, 'मैं रूनियाँ से विवाह करके रहूँगा।'

'फिर हम सब को एकत्र करने का अभिप्राय: क्या था ?'

'जानकारी कराना। मैं छिपकर यह काम करना नहीं चाहता था। कोई बाद में यह कहने का साहस न करे कि 'मैं रूनियाँ को भगा ले गया था।' वह क्षण भर रुका, 'अच्छा, अब मैं आप लोगों से आज्ञा चाहता हूँ। मेरी त्रुटियों को क्षमा करेंगे।' वह मुड़ पड़ा और लम्बे-लम्बे पैर

रखता हुआ रूनियाँ के घर आया। उसे साथ लिया और स्टेशन को चल पड़ा।

पूरा गाँव किंकर्त्तव्यविमूढ़ बना यह नाटक देखता रह गया। कुछ समय बाद दोनों सब की आँखों से ओझल हो गये।

गाड़ी आई और दोनों को लेकर चल दी। इतनी देर बाद रूनियाँ के मुँह से शब्द निकले, 'कहाँ चल रहे हो ?'

'चित्रकूट।'

'अपने गुरुजी के पास ?'

'नहीं। कामतानाथ पर्वत के दर्शन करने। मनौती मानी थी कि रूनो से विवाह हो जाने पर संग-संग, गाँठ बाँध कर परिक्रमा करूँगा तब घर बसाने वाला धंधा करूँगा।'

'चलो हटो।' रूनियाँ ने सिर झुका लिया।

फिर दोनों में धीरे-धीरे सरस बातें होने लगीं।

स्टेशन आते गये। गाड़ी बढ़ती गई। इलाहाबाद आया। दोनों उतर पड़े। रामबाग के पास एक धर्मशाला में टिक गये। दो दिनों तक नगर का भ्रमण हुआ। कुछ आवश्यक वस्तुयें खरीदी गईं और कपड़े भी बनवाये गये। तदुपरान्त चित्रकूट के लिये प्रस्थान हो गया। रूनियाँ मन-ही-मन फूली नहीं समा रही थी। उसके छोटे-से हृदय में जीवन के सुखों की नन्ही-नन्ही अभिलाषाओं की तथा प्रीतम के प्यार की जितनी कल्पनायें थीं वे सब साकार हो उठी थीं। धीरज ने अपना सर्वस्व उसके आंचल में उड़ेल दिया था। अपनी कहने वाली कोई चीज़ पास नहीं रखी थी। सब रूनियाँमय हो गई थी।

चित्रकूट आ गया। घनघोर जंगल। धीरज उसे साथ लेकर गुरुदेव के आश्रम को चल पड़ा। रूनियाँ भय के कारण धीरज से चिपकी-चिपकी चल रही थी। उसे यहाँ आना अब अच्छा नहीं लग रहा था। यदि जंगलों की भयंकरता का ऐसा अनुमान होता तो वह धीरज को कदापि न आने देती।

स्थान आ गया। रूनियाँ को सहारा देता हुआ धीरज पहाड़ी की चोटी पर जा पहुँचा जहाँ गुफा के भीतर संन्यासी वेश में गुरुदेव का गुप्तचर बैठा रहता था। किन्तु इस समय वहाँ कोई नहीं था। ध्यान से देखने पर यह भी अनुमान लग गया कि गुफा बहुत समय से वीरान स्थिति में है। उसे आश्चर्य हुआ। थोड़ी देर तक खड़े-खड़े सोचते रहने के उपरान्त वह बोला, 'तुम यहीं बैठो। मैं अभी आता हूँ।'

'कहाँ जा रहे हो ?'

'इस पहाड़ी के अन्दर।'

'इसके अन्दर !' रूनियाँ काँप उठी, 'वहाँ क्या है ?'

धीरज मुसकराया, 'डरो नहीं। इसके भीतर रहने का स्थान है। वहीं गुरुदेव रहते हैं।'

'नहीं। हम भी साथ चलेंगे।'

'मैं अभी आता हूँ। बिल्कुल देर नहीं लगेगी।'

'देर लगे चाहे न लगे। हम भी साथ चलेंगे। यहाँ हमें डर लगता है।'

धीरज को साथ लेकर चलना पड़ा। कन्दराओं से होता हुआ जब धीरज उन बड़ी गुफाओं में आया तो वहाँ भी उसे निर्जनता ही मिली। वह समझ गया कि सब लोग छोड़ कर चले गये परन्तु उसे सूचना क्यों नहीं दी गई—यही समझ में न आने वाली बात थी। वह लौटने के लिये मुड़ा। तब तक ऊपर किसी के पैरों की आहट मिली। उसने सामने निकल कर आवाज दी, 'कौन ?'

एक व्यक्ति साधुओं की भाँति बाल बढ़ाये सामने आ खड़ा हुआ और मुसकरा कर बोला, 'धीरज भाई।' वह नीचे आया और धीरज के गले से लिपट गया, 'तुमने मुझे पहिचाना नहीं ? मैं दिनेश हूँ दिनेश।' वह अलग होकर खड़ा हो गया।

धीरज ने निहारा और पुनः गले से लगा लिया, 'बिल्कुल पहिचान में नहीं आते यार।'

दोनों हंसने लगे।

'मैं तो लौटा जा रहा था। इन गुफाओं की निर्जनता……।'

'मैं अब ऊपर रहने लगा हूँ। एक नई गुफा खोज निकाली है। यहाँ पर……।'

'गुरुदेव कहाँ हैं ?'

'उनकी मृत्यु हो गई। ठीक १५ अगस्त के दिन। बैठे-बैठे प्राण पखेरू उड़ गये।'

धीरज ने सिर झुका लिया। नेत्रकोर सजल हो आये। 'और लोग कहाँ चले गये ?'

'कुछ पता नहीं। मैं यहाँ अकेला हूँ।'

१५

दिनेश के आगे-पीछे कोई न था। अकेला था और अब अकेला ही रहकर जीवन समाप्त कर देने का संकल्प कर लिया था। संसार स्वार्थमय प्रतीत होने लगा था। लगाव नाम की चीज उसे दिखलाई नहीं पड़ रही थी और कहीं थी भी तो केवल कहने के लिए थी। प्रेम का रूप बदल गया था। वास्तविकता के स्थान पर कृत्रिमता आ गई थी—दिखावन का जाल फैल गया। प्रत्येक अपनी-अपनी कह रहा था और अपनी-अपनी की पूर्ति में जुटा हुआ था—बिना भले-बुरे का ध्यान किए हुए। दिनेश का दिल भर गया था। उसे दुनिया वालों से नफरत हो गई थी। परिणामस्वरूप, गुरुदेव की मृत्यु के उपरान्त जब सब चले गए तो वह धुइँ लगाकर वहीं बैठ गया। उसको सब से विरक्ति हो गई थी।

दिन बीतते गए। साधना बढ़ती चली गई। नियम कठोर होते गए। ब्रह्मवेला में उठकर मंदाकिनी में स्नान करना, वहीं किसी शिला पर बैठकर जगत पिता का सूर्योदय तक स्मरण करना। पुनः अपनी गुफा में आना और दिन ढले तक अपनी लेखनी को चलाते रहना। पुनः दैनिक क्रियाओं के लिए जाना और स्नान, ध्यान के उपरान्त उपलब्ध फल-फूलों का सेवन करना। गुफा में आकर लेट जाना और चिन्तन-मनन करते हुए सो जाना। बस यही जीवनचर्या थी। दिनेश दर्शन पर एक ग्रन्थ लिख रहा था।

धीरज और रूनियाँ के आने से दिनेश को कुछ उलझन अवश्य हुई थी; परन्तु थोड़े ही समय में उनके स्वभाव ने जो अपनत्व का भाव प्रदर्शित किया उससे वह बड़ा प्रभावित हुआ था। अतः उसने अधिक रुकने के लिए आग्रह किया था। रूनियाँ रुकना नहीं चाहती थी; परन्तु धीरज ने दिनेश के आग्रह को टालना उचित नहीं समझा। वह रुक गया। दिनेश ने चित्रकूट के किसी एक व्यक्ति के नाम पर्चा लिख दिया। धीरज को वहीं से भोजन की सामग्री मिल जाया करती थी।

प्रकृति के स्वच्छन्द वातावरण में जो सौन्दर्य का आकर्षण है वह अन्यत्र दुर्लभ है। पर विशेषता यह है कि इस आकर्षण का रूप अलग-अलग व्यक्तियों के लिए अलग-अलग है। जहाँ यह साधु-संन्यासियों को शान्ति की प्रेरणा देकर भगवत भजन में तल्लीन कराता है वहीं सांसारिक प्राणियों में अकुलाहट उत्पन्न कर उन्हें अधिक रसमय बना देता है। उनकी इच्छाओं को उभाड़ कर प्यास को बढ़ा देता है। रूनियाँ और धीरज की भी प्यास बढ़ गई थी। नई उमंगों में तीव्रता आ गई थी। सब कुछ प्राप्य होने पर भी अप्राप्य वाली स्थिति बनी रहती थी। नित्य दोपहर में भोजनोपरान्त पहाड़ी से उतर कर दोनों नीचे आ जाते और घन्टों लुका-छिपी वाला खेल खेला करते थे। कभी रूनियाँ धीरज को चकमा देती तो कभी धीरज रूनियाँ को और अन्त में जब दोनों मिलते तो एक दूसरे की भुजाओं में इतने कसकर जकड़ जाते कि जल्दी अलग होना उनके लिए असम्भव हो जाता।

कई दिन और बीत गए। आनन्द का संसार बसता रहा। एक दिन की घटना है—दोनों लुकते-छिपते दूर निकल गए और अनजाने में एक-दूसरे से अलग भी हो गए। फिर भी सामीप्य का भ्रम बना रहा। काफी समय हो जाने पर भी जब वे एक-दूसरे से न मिल सके तो चिन्ता बढ़ी। वास्तविकता का ज्ञान हुआ। रूनियाँ ने आवाज लगानी शुरू की। धीरज भी आवाज लगाने लगा। इसी बीच एक तेंदुआ गर्जता हुआ बगल की झाड़ी से किसी शिकार के हेतु कूदा और रूनियाँ के सामने से निकल गया। रूनियाँ चिल्लाई और मूर्छित होकर गिर पड़ी।

धीरज के कानों में रूनियाँ की चिल्लाहट पड़ी। वह अधीर हो उठा। मन में रुलाई छूट आई। 'रूनो, रूनो' चिल्लाता हुआ वह इधर-उधर दौड़ने लगा और काफी देर बाद रूनियाँ के समीप पहुँच सका। रूनियाँ उसी प्रकार अचेत पड़ी हुई थी। उसने उसे गोद में उठा लिया और बेहोशी दूर करने की कोशिशें करने लगा : वह होश में नहीं आई। तब वह जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाता मंदाकिनी के किनारे आया और उसके ऊपर पानी की छींटें डालीं। रूनियाँ की आँखें खुलीं। धीरज उससे लिपट गया और लगा आँखों से आँसू बहाने। रूनियाँ भी रोने लगी। कुछ देर बाद धीरे-धीरे दोनों पहाड़ी की ओर चल पड़े।

रास्ते में रूनियाँ ने कहा, 'अब यहाँ से चलने की तैयारी करो। बहुत दिन हो गए।'

'हाँ ! मैं भी यही सोच रहा हूँ। अगर हो सका तो कल ही चले चलेंगे। अभी चलकर दिनेश से बातें करता हूँ।'

'पर यहाँ से चलोगे कहाँ ?'

'कहीं भी चले, चलेंगे। इलाहाबाद, बनारस, आजमगढ़। जहाँ तुम्हारी राय होगी। वैसे बनारस या आजमगढ़ अधिक सुविधाजनक होंगे'।'

'आजमगढ़ ठीक है। बनारस नहीं रहेंगे, लेकिन रहने-वहने का...'

रूनियाँ कहती-कहती रुक गई।

धीरज मुसकराया और झुक कर उसके कपोलों को चूम लिया, 'सब हो जायेगा। धीरज के मिलने वाले बहुत हैं।'

पहाड़ी आ गई। दोनों ऊपर चढ़ चले।

दिनेश टहल रहा था। अभी थोड़ी देर पहले लिख कर उठा था। धीरज और रूनियाँ जब ऊपर आए तो उसने पूछा, 'आज बड़ी देर कर दी। कहीं दूर निकल गए थे क्या ? बैठो।' वह स्वयं भी बैठ गया।

धीरज मुसकराया, 'यही समझ लो। किसी की कमजोरी बतलाना भी तो ठीक नहीं होता।'

दिनेश भी मुसकराया, 'समझा, रूनो बहन का कोई मामला है। क्यों ?' उसने रूनो की ओर देखा।

'दिनेश भाई खिल्ली उड़ाना आसान है। अगर सामने पड़ गया होता तो सिट्टीपिट्टी इनकी भूल गई होती। इस समय अब चाहे जो कह लें।'

दिनेश हंसने लगा, 'बात क्या हुई ?'

रूनियाँ ने बढ़ा-चढ़ा कर घटना का वर्णन किया। दिनेश बड़ी खामोशी से सुनता रहा और अन्त में बनावटी आश्चर्य दिखलाकर बोला, 'अच्छा ! ऐसा हो गया ? ओफ़, तेंदुआ तो बड़ा हिंसक पशु है। रूनो बहन, मैं सच कहता हूँ अगर धीरज के सामने पड़ गया होता तो हफ्तों खाट से उठ न पाते। तुम तो अब भी ज्यों का त्यों बनी हो।'

रूनियाँ समझ गई, 'चलिए।' उसने मुँह लटका लिया, 'आप भी हमें बुद्धू बनाने लगे।'

धीरज और दिनेश ठहाका मार कर हंस उठे।

और थोड़ी देर तक इधर-उधर की बातें होती रहीं फिर धीरज ने अपने जाने की बात कही।

'अवश्य।' दिनेश ने उत्तर दिया, 'अब तुम्हें अपनी ही दुनिया को देखना है। यह दुनिया तो हमारी है। कब जाओगे ?'

'कल सोच रहा हूँ ।'

'ठीक', फिर उसने रूनियाँ की ओर देखा 'इन्हें आगे जीवन में क्या करना है इसकी सलाह मैंने दे दी है । प्रभु चाहेंगे तो दिन-प्रतिदिन इन का यश बढ़ता ही जायेगा । जाओ भोजन की तैयारी करो । मैं अब सन्ध्योपासन के लिए जाऊँगा ।' वह उठकर चला गया ।

दूसरे दिन दोनों ने दिनेश से विदाई ली । रूनियाँ ने चलते समय पूछा, 'आप उधर आने की कभी कृपा नहीं करेंगे ?'

'आवश्यकता पड़ने पर अवश्य आऊँगा बहन । वैसे आना सम्भव नहीं हो सकेगा ।' उसने हाथ जोड़े ।

दोनों हाथ जोड़ते हुए बढ़ गए ।

× × ×

रूनियाँ के साथ धीरज आजमगढ़ में रहने लगा । जन-सेवा होने लगी । सबके दुःख-सुख में वह काम आने लगा । पुलिस की धाँधागरदी और अत्याचारों का विरोध करके उन्हें नया सबक देने लगा । जब तब आवश्यकता पड़ने पर किसी इन्सपेक्टर या एस० पी० के विरुद्ध प्रदर्शन करा देता तथा ऊपर के अधिकारियों से मिलकर तबादला भी करा देता । वह पुलिस विभाग के पीछे हाथ धोकर पड़ा रहता था । अपनी सरकार बन जाने पर भी उस विभाग में कोई परिवर्तन नहीं आ सका था । ज़ालिमाना तरीके अब भी वर्तमान थे, लूट-खसोट उसी प्रकार चल रही थी ।

समय व्यतीत होता गया । धीरज की सेवायें चलती रहीं, ख्याति बढ़ती रही । जो नहीं जानते थे वे भी जानने-पहिचानने लगे । आदर सम्मान बढ़ता गया । फिर देश का अपना विधान बना । गणतन्त्र राज्य की घोषणा हुई और प्रथम चुनाव हुआ । धीरज को विधान सभा के लिए खड़ा कर दिया गया । हज़ारों वोटों से अपने प्रतिद्वन्द्वियों को पछाड़ता हुआ धीरज पंडित चुन लिया गया । नगर में जुलूस निकला, 'इन्कलाब जिन्दाबाद' के नारे लगे और हफ्तों मुहल्ले-मुहल्ले स्वागत-

सत्कार होता रहा ।

इसी बीच अनायास एक दिन हृदय की गति रुक जाने के कारण लोकसभा के नव-निर्वाचित सदस्य की मृत्यु हो गई । सीट खाली हो गई । पुनः धीरज पंडित को खड़ा किया गया और इस चुनाव में भी उसने विजय प्राप्त की । परसाँ गाँव का हल चलाने वाला किसान एम० पी० बन गया । कब क्या हो सकता है कहना कठिन है । सृष्टि निर्माता की यही पहेली आज तक बूझने में नहीं आ सकी है ।

जिस दिन चुनाव की घोषणा हुई थी उस रात रूनियां को गोद में उठाते हुए धीरज ने पूछा था, 'आज रून्नो मुझ से क्या माँगोगी ?'

'कुछ नहीं ।' उसने आँखें बन्द कर लीं ।

'नहीं, कुछ माँगना पड़ेगा ।'

'जबरदस्ती !'

'हां, जबरदस्ती ।'

उसने आँखें खोलीं, 'अच्छी बात है, तो हमारा धीरज हमें वापस कर दो ।'

'क्यों ? "धीरज पंडित" तुम्हें पसन्द नहीं आए ?'

रूनियाँ ने मुंह बनाया, 'बिल्कुल नहीं ।' और उसने धीरज के कुरते में अपने मुंह को छिपा लिया ।

जिन्दगी की राह पर मिलते रहेंगे मोड़ हरदम,
रूप के बाजार में होते रहेंगे मोल हरदम,
प्यार का पाना कठिन है और है मुश्किल निभाना—
स्वार्थ से परमार्थ का स्तर बड़ा होता है हरदम।

१६

धीरज पंडित एम० पी० हो गया। दिल्ली आने-जाने लगा। जब तब रूनियाँ भी उसके साथ दिल्ली जाती और मास-दो-मास रहकर लौट आती। वैसे स्थाई रूप से आजमगढ़ ही रहना होता था। कभी-कभी रूनियाँ को साथ ले धीरज भ्रमण को भी निकल जाता। उसे देश के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध स्थानों को दिखलाता; तीर्थों का दर्शन कराता तथा काश्मीर और शिमला की सैर कराकर प्यार का सच्चा परिचय देता। रूनियाँ फूली नहीं समाती और अपना सर्वस्व निछावर करने को सदैव तैयार रहती। उसके प्रेम में सोने में सुगन्ध वाली स्थिति आ गई थी। आनी ही चाहिये थी। मिसाल कायम करने के लिये बहुत जरूरी था।

अँग्रेजी में कहावत है—सोसाइटी मेक्स ए मैन परफेक्ट। जैसी संगत होगी वैसी आदतें बनेंगी। रूनियाँ अब रूनियाँ नहीं थी और न धीरज पहले वाला धीरज था। पैर में बहुमूल्य चप्पले और रंग-बिरंगी साड़ियों तथा ब्लाऊजों को पहनकर जब वह धीरज के साथ निकलती तो देखने वाले देखते ही रह जाते। सुन्दरता, प्याले के जाम की तरह छलक उठती। किसी के लिये अनुमान लगाना कठिन था कि वह एक अहीर की लड़की होगी जो कभी कन्डे पाथा करती थी।

धीरज भी अब खद्दर की बारीक बीस रुपये जोड़े वाली धोती और दस-बारह रुपये गज वाले सिलक का कुरता पहनने लगा था। हाथ में कीमती घड़ी थी और जब-तब सिगरेट का भी उपयोग होने लगा था। तड़क-भड़क बढ़ गई थी। रंगत बदल गई थी। रूप निखर आया था।

धीरज देहाती से शहराती हो गया था। भावनायें बदलने लगी थीं। पद-प्रतिष्ठा का ध्यान आ गया था। छोटे और बड़े की तुलना होने लगी थी। मन बहकने लगा था।

दो वर्ष समाप्त हो गये। अब धीरज ने एक कार भी रख ली थी। स्वयं चलाने लगा था और जब-तब संध्या को कनाट सरकस के चक्कर भी लगाने लगा था। क्यों न लगाता ? कनॉट सरकस की इठलाती-बलखाती नये-नये वस्त्रों से सुसज्जित युवतियाँ जिनके पहनावे में शरीर का एक-एक अंग उभरा हुआ, कुछ खुला और कुछ ढका हुआ, देखने को जो मिलता था। उनकी खिलखिलाहट, कजरारे नेत्रों की अकुलाहट और विशेष प्रकार से किसी को देखते हुये आपस में मजाक उड़ा कर निकल जाने की अदा जो कयामत ढाती थी। भला दिल वाला कैसे चैन पा सकता था और जिसके पास पैसा हो उसके लिये तो बिल्कुल नामुमकिन था। दिल को दौलत का सहारा मिलने पर स्वाभाविक है उस में रंगमय संसार का सृजन होना और एक जवान दिल के लिये तो बिल्कुल ही स्वाभाविक है।

कनॉट सरकस के चक्कर लगते रहे; किन्तु जो तेजी आनी चाहिये थी वह अभी धीरज में नहीं आ सकी थी। कारण, अभी मस्तिष्क का संतुलन ठीक था। बुद्धि में जज्बात को रोकने का सामर्थ्य शेष था। वह जब-तब अपनी बदलती हुई मनोवृत्ति पर अपने को धिक्कारता, अपने को हेय और पथ-भ्रष्ट कहता तथा भविष्य में संयम से रहने की प्रतिज्ञायें करता; परन्तु उसकी प्रतिज्ञायें उसे बहुत दिनों तक रोक नहीं पातीं। अन्तर्द्वन्द्व उठ खड़ा होता। तर्क होने लगते। निष्कर्ष निकलता—नेत्र देखने के हेतु बनाये गये हैं। देखना पाप नहीं है। सृष्टि में सुन्दर एवं असुन्दर वस्तुओं का मूल्यांकन होना चाहिये। जड़ और चेतन में प्रकृति का भेद इसी अभिप्रायवश है। धीरज पुनः कनाट सरकस आने-जाने लगता। रेस्ट्राँ में मित्र मंडली के संग बैठकर घंटों चाय अथवा काफी चुस्की लेने लगता।

इस बार धीरज का आजमगढ़ काफी दिनों बाद जाना हुआ था। रूनियाँ ने उलाहना दी, 'इस बार तुम्हें बहुत दिन लग गये। जैसा तुमने कहा था उसके हिसाब से तो तुम्हारी बैठक बहुत पहले खत्म हो गई होगी ?'

धीरज ने बहाना बनाया, 'कुछ और मसले आ गये थे। उन्हीं में उलझा रहा।' धीरज ने रूनियाँ से प्रथम बार झूठ कहा था।

रूनियाँ को धीरज के कथन पर विश्वास हो गया। अविश्वास का कोई कारण नहीं था फिर भी हंसी के विचार से वह मुसकरा कर बोली, 'क्यों नहीं ? दिल्ली जैसी जगह में मसलों की क्या कमी है ? भगवान बचाये। जहाँ तितलियों का इतना जमघट हो वहाँ का क्या कहना ? जिसे चाहें जाल में फंसा कर अपना गुलाम बना लें।'

'इस में क्या सन्देह है ? गुलाम न बना होता तो रूनो कैसे मिलती ?' धीरज ने रूनियाँ की चापलूसी की।

'चलो। तुम्हारी रूनी ऐसी सुन्दर नहीं है जो तुम्हें अपना गुलाम बना ले।'

'यह तो इन आँखों से पूछो जिनकी प्यास आज दिन भी वैसी ही बनी है। बर्षों बीत गये, फिर भी लगता है जैसे कल तुम मिली हो। इतनी मादकता और·······।'

रूनियाँ ने उसके मुंह पर हाथ रख दिया, 'बस करो। दुबारा कहने के लिये तो कुछ रखो।' वह हंसने लगी, पर उसका हृदय गद्‌गद् हो उठा था।

धीरज ने उसे अपनी भुजाओं में घेर लिया और फिर दोनों के अधर सट गये। रूनियाँ ने फुसफुसाते हुये कहा, 'तुम दिल्ली चले जाते हो तो हमारे लिये एक-एक क्षण पहाड़ हो जाता है। रहते हैं आजमगढ़ में पर मन तुम्हारे पास भटका करता है।'

धीरज ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह टकटकी लगाये रूनियाँ को देखता रहा। उसके नेत्रों में दो चित्र खिंच आये थे—रूनियाँ की और

कनाट सरकस की युवतियों की। वह तुलना करने लगा था—सुन्दरता का अनुपात निकालने लगा था।

मिनट-दो-मिनट गुज़र जाने पर भी जब धीरज का निहारना समाप्त न हुआ तो रूनियाँ बोल उठी, 'क्या घूर रहे हो ? आज कोई नई बात हो गई है ?'

धीरज का ध्यान बंटा 'हाँ।' उसने अपने को संभाला।

'क्या ?'

'बताऊँगा नहीं।'

'क्यों ?'

'महत्त्व कम हो जायेगा।'

'वाह ! हमारे चेहरे में अब ऐसे गुण भी आ गये हैं ?'

'बिल्कुल।'

'तब तो हमें इसे अधिक संजो कर रखने की जरूरत है।'

'अवश्य।'

'तो छोड़ो।' उसने अपने को छुड़ाने का झूठा प्रयत्न किया।

'क्यों ?' धीरज ने उसे अधिक कस लिया।

'संजो कर रखना चाहिये न ? तुम्हारे समीप रहने से बिगड़ने का भय है।'

धीरज हंसने लगा, 'मेरा दाँव मेरे ही ऊपर ? यह अच्छी रही।' उसने उसके अधरों को चूम लिया।

रूनियाँ ने आगे विरोध नहीं किया

१७

पार्लियामेंट का अधिवेशन आरम्भ होते ही धीरज दिल्ली आ गया। चलते समय रूनियाँ ने शीघ्र आने को कहा था और बार-बार कहा था। धीरज ने भी उसकी सौगंध खाकर प्रतिज्ञा की थी। रूनियाँ के प्रति उसके हृदय में श्रद्धा बढ़ गई थी। उसके निःस्वार्थ प्रेम पर अपना सब कुछ अर्पण कर देने की भावना प्रबल हो उठी थी। धीरज को अपने ऊपर घृणा हो आई थी और यही कारण था कि वह रास्ते भर अपने को कोसता हुआ आया था। अपने को नीच और लम्पट समझता हुआ आया था।

स्वतन्त्रता से पूर्व अंग्रेजी शासन में जो आतंक कोट और पैंट का था, ठीक उसी प्रकार का आतंक अब खद्दर के धोती-कुरता का हो गया था। बापू ने अपने त्याग और तपस्या से खद्दर के प्रति जनसमुदाय में जो स्नेह और श्रद्धा की भावना उत्पन्न की थी, अब वह समाप्त हो चली थी। खद्दर पर अब शासन का मुलम्मा चढ़ गया था। खद्दर पहनने वाले नेता अथवा पदाधिकारी समझे जाने लगे थे। लोग उनसे भय खाने लगे थे—जी हुज़ूरी करने लगे थे। धीरज का भी अब यही नकशा था। उसकी चाल-ढ़ाल, वेश-भूषा और मोटर की सवारी ने उसके व्यक्तित्व में वही पुट ला दिया था। वह कुछ समझा जाने लगा था।

एक दिन की बात है संध्या का समय था। कनॉट सरकस की बड़ी-बड़ी दुकानों की बत्तियां जगमगा उठी थीं। चहल-पहल बढ़ गई थी। सुन्दर वस्त्रों और आभूषणों से सुसज्जित स्त्रियों एवं पुरुषों की जमघट बढ़ने लगी थी। उनके रूप के सामने आँखें चौंधियाने लगी थीं। इसी

समय ओडियन सिनेमा के सामने धीरज ने कार लाकर खड़ी की। पैसों की लालच में घूम-घूम कर मोटरों और मोटर साइकिलों को साफ करने वाले एक व्यक्ति ने दौड़कर सलाम किया और झट से दरवाजा खोल दिया, 'हुजूर के दर्शन बहुत दिनों बाद हुए। क्या सरकार दौरे पर बाहर चले गए थे?' उसने पूछा।

'नहीं। यहीं था' धीरज बाहर आ गया।

उस व्यक्ति ने दरवाजा बन्द कर दिया।

धीरज ने मुड़ते हुए आगे बढ़ने के लिए पैर उठाए ही थे कि सामने से दो युवतियां आती हुई दिखलाई पड़ीं जो बिल्कुल अल्ट्रा मार्डन कपड़ों में थीं। कन्धे तक खुली हुई गोरी-गोरी बाहें, वक्षस्थल का कुछ-कुछ दिखता हुआ भाग, अधरों पर लिपिस्टक, विशेष प्रकार की कानों में बड़ी-बड़ी बालियां, केश-विन्यास की अद्वियता और इन सब से भी अधिक उनकी अदा भरी चाल जो अधिक ऊँची तथा नोकदार जूतियों के हील के कारण नितम्बों को उभार कर सुन्दरता में चार चाँद लगा रही थीं। धीरज की दृष्टि अटक गई और कुछ देर तक अटकी रही। अटकने का कारण था, न मालूम क्यों उनमें एक जो अधिक रूप का भण्डार लिए हुए थी, उसे मुड़कर बार-बार देख रही थी। धीरज कुछ समझ न सका। दोनों बढ़ती हुई सिनेमा हाल के अन्दर चली गईं। सम्भवतः उन्होंने एडवांस बुकिंग करा रखी थी।

सिनेमा के सामने पहुँचकर धीरज ठिठका; किन्तु तुरन्त आगे बढ़ गया। अन्तर्द्वन्द्व उठ खड़ा हुआ। पैर आगे बढ़ रहे थे और मन पीछे छूटता जा रहा था। बड़ी मुश्किल आ गई थी। वह कुछ दूर आगे गया लेकिन और अधिक जाना असम्भव हो गया। वह लौट पड़ा और लम्बे-लम्बे डग रखता हुआ ओडियन आया। टिकट खरीदे और हाल में दाखिल हो गया। अन्दर खड़े गाइड ने टिकट लेकर नम्बर देखा और उङ्गली से संकेत करता हुआ बोला, 'इस सीट पर।'

हाल में किसी को ढूँढ़ती हुई आँखें अपनी सीट पर आईं। संयोग

की बात, ठीक उसके पीछे वाली कुरसियों पर वही दोनों युवतियाँ बैठी थीं। धीरज उन्हें घूरता हुआ अपनी कुरसी पर बैठ गया। दोनों हंस पड़ीं। धीरज पानी-पानी हो गया। उसने अनुभव किया कि उसका इस प्रकार घूरना असम्यतापूर्ण था।

एक युवती धीरे से दूसरी से बोली, 'तेरा भी रंजना जवाब नहीं।'

'क्यों?'

'जिसकी ओर नजर उठा कर देख लेती है वही आहें भरता हुआ दीवाना बन जाता है। बेचारा किस काम से कनॉट सरकस आया होगा लेकिन तेरी नजरों का शिकार होकर सिनेमा देखने चला आया। तू भी हद की शरारत करती है।'

'अजीब हाल है। क्या कनॉट सरकस आना छोड़ दूं या आँखों पर पट्टी बाँधकर चला करूँ? भाई जान को इश्क करने का शौक है तो इसमें मेरा क्या कसूर? हिन्दुस्तान में कमी नहीं है, एक ढूंढोगी हजार मिलेंगे।'

दोनों खिलखिला पड़ीं। धीरज समझ रहा था कि पीछे की फुस-फुसाहट और खिलखिलाहट उसी की चर्चा के आधार पर है। उसे अपने ऊपर क्रोध आया। उसे पिक्चर देखने नहीं आना था। दिल्ली की लड़कियाँ बड़ी फ्लर्ट होती हैं। उसे अपने को इतना नहीं गिराना चाहिए। उसे अपने मान-सम्मान का भी ध्यान रखना चाहिए। धीरज मन ही मन अपने को धिक्कारने लगा। एक बार तो उठकर चल देने की भी इच्छा हो गई पर न मालूम क्या सोच कर बैठा रह गया। तब तक उसके कानों में आवाज पड़ी, 'अपनी गवर्नमेंट बनने से देश की हालत चाहे जो हुई हो लेकिन खद्दर पहनने वालों की खूब बन आई है। बड़ी रकमें कट रही हैं।'

धीरज को अनुमान हो गया कि यह आवाज उसी लड़की की है जिसकी चितवनों का शिकार होकर वह सिनेमा देखने आ गया है।

पुनः आवाज आई, 'तो तुझे क्यों जलन है? तू भी खद्दर पहन।'

दूसरी ने उत्तर दिया था ।

'हिस् ! सो अगली क्लास ।'

'तुझे कपड़ों से मतलब है या रकम से ?'

'फिर तो इससे बेहतर होगा कि मैं किसी खद्दर वाले से मैरिज कर लूं ? खद्दर पहनने से जान भी बच जायेगी और रकम के साथ-साथ कार घूमने को मिलेगी ?'

'ग्रान्ड आइडिया रंजना ! मेरे दिमाग में यह चीज कभी नहीं आई वरना मैंने अब तक किसी खद्दर वाले से शादी कर ली होती ।'

'तो अब कर ले । तलाश करने में बहुत परेशानी नहीं होगी, रस्ते चलते मिल जायेंगे ।'

'यह हालत है ?'

'इससे भी बदतर ।' दोनों हंसने लगीं ।

हाल की बत्ती बुझ गई । न्यूज रील शुरू हो गई । पीछे दोनों युवतियों की बातचीत बन्द हो गई । धीरज की जलन बढ़ गई थी । पीछे जो वार्ता हुई थी वह सब जानबूझकर हुई थी और उसे सुनाने के हेतु हुई थी । खद्दर की ओट में उसे बुद्धू बनाया गया था । न्यूज रील चल रही थी परन्तु उसमें क्या दिखाया जा रहा था धीरज को इल्म नहीं । उसका दिमाग कहीं और था ।

न्यूज समाप्त हुई और पिक्चर शुरू हो गई । धीरज का मस्तिष्क अपने स्थान पर आया । नेत्र चित्र देखने लगे । खेल चलता रहा ।

मध्यान्तर हुआ । बत्तियां जल गईं । बिजली के प्रकाश में रूप चमक उठे । धीरज ने अंगड़ाई ली और यों ही पीछे मुड़ कर देखा था कि उसके मुंह से अनायास निकल पड़ा, 'यदि अशिष्टता न हो तो एक बात कहूं ?'

'आफ कोर्स । कहिए ।' रंजना के शब्द थे ।

'आप लोगों के लिए आईसक्रीम मंगवाऊं ? खद्दर की बुराई करते-करते सम्भवतः गला सूख गया होगा ?'

'नो । थैंक्यू ।'

'जैसी आपकी मर्जी ।' धीरज उठकर बाहर चला गया और मिनट दो मिनट तक मन ही मन हंसता रहा । उसे अपने साहस पर बड़ा आश्चर्य हो रहा था ।

पान वाले से पान लिये और पुनः अन्दर आकर बैठ गया । बत्तियाँ बुझ गईं । खेल आरम्भ हो गया ।

खेल समाप्त होने पर धीरज ने खड़े होते हुए उन दोनों की ओर देखा पर उन दोनों ने मुंह फेर रखे थे । धीरज मुसकराता हुआ बाहर निकला और अपनी गाड़ी पर जा बैठा । रास्ते भर वह अपने साहस की सराहना करता रहा और प्रसन्न होता रहा ।

उधर रंजना की सहेली सविता रास्ते में कह रही थी, 'बड़ा दबंग निकला, डारलिंग । एक सेन्टेन्स में हम लोगों की बोलती बन्द कर दी । बाज कुरता-धोती वाले भी कमाल के इन्सान होते हैं ।'

रंजना हंसने लगी । 'तू उसे जानती नहीं है सविता । वह पार्लियामेन्ट का मेम्बर है—धीरज पंडित ! फाइन स्पीकर । मैंने कई बार उसे बोलते सुना है ।'

सविता ने दांतों तले उंगुली दबाई, 'यही है धीरज पंडित जिसके बारे में हम लोगों ने……।'

'हाँ यही है ।'

'इसकी क्या उम्र होगी ?'

'मेरा अन्दाज है पैंतीस-छत्तीस ।'

'यही मेरा भी अनुमान है ।' वह पल भर रुकी फिर रंजना की पीठ में चिकोटी काटती हुई बोली, 'तो आजकल इस पर डोरे डालने की भूमिका बनाई जा रही है क्यों ?'

रंजना 'सी' करती हुई उछल पड़ी, 'आईडिया बुरा तो नहीं है ? रकम के साथ-साथ मोटर भी मिलेगी ।'

दोनों हंसने लगीं ।

सविता ने पुनः बात छेड़ी 'अगर मैरिज हुआ तो ?'

'शायद नहीं है। और अगर हुआ भी तो मेरा क्या ले जायेगा। वैसे अभी तक जब भी देखा है अकेले ही देखा है।'

'तब तो तेरी चाँदी है। उम्मीद है गोट फिट हो जायेगी।'

'गोट मेरी क्या उसकी फिट हो जायेगी। मिस्टर के भाग्य खुल जायेंगे। देखती नहीं सैकड़ों आहें भरा करते हैं। हैं या नहीं।'

'बिल्कुल हैं। दस-पांच ज़्यादा।'

१८

धीरज को याद भूली नहीं थी। कनॉट सरकस आता तो अनजाने में उसकी आँखें इधर-उधर ढूँढ़ने का प्रयत्न अवश्य कर लेतीं। दो-एक बार तो भेंट होने की आशा में उसने कनॉट सरकस का पूरा चक्कर भी लगाया था। सम्भवतः उसकी छवि मन में उतर गई थी। यद्यपि उसकी बातों से साफ मालूम हो गया था कि उसे खद्दर वालों से सख्त नफरत है; परन्तु उसके नेत्र जो उसके वश में नहीं रह गये थे। वे उस रूप को देखने के लिये अकुला रहे थे। बड़ी विचित्रता है हृदय सम्बन्धी भावनाओं की। इनका रहस्य आज दिन भी ज्यों का त्यों बना हुआ है। कोई विज्ञान भेद नहीं बता सका।

अचानक एक दिन भेंट हो ही तो गई। खद्दर की दुकान से कपड़ों का बण्डल लेकर धीरज निकला। सामने रेस्ट्राँ में चाय पीने की इच्छा हुई। उसने सड़क पार की। सिगरेट की तलब मालूम हुई तो नीचे वाली जेब से डिब्बी और दियासलाई निकाली। डिब्बी के साथ-साथ एक-एक रुपये के दो-तीन नोट खिसक कर बाहर आ गये और सड़क पर उड़ चले। पीछे से किसी ने चिल्लाकर कहा 'बाबू जी, नोट गिर गये।'

धीरज ने मुड़कर देखा और बढ़ कर नोट उठाये। ज्यों ही उसका सिर ऊपर उठा तो देखा कि सामने से वही दोनों मूर्तियाँ चली आ रही हैं। उनके ओठों पर मुसकराहट थी पर नेत्र दूसरी ओर थे। धीरज समझ गया कि देखकर भी न देखने का भाव प्रदर्शित किया जा रहा है। वह रुक कर उनके पीछे-पीछे चलने लगा।

दोनों सामने के रेस्ट्राँ में चली गईं। धीरज को प्रसन्नता हुई। वह भी अन्दर आया। दोनों एक कोने वाली मेज पर जाकर बैठ गईं थीं। धीरज भी समीप वाली मेज पर आकर बैठ गया पर उसने अपना मुँह दूसरी ओर कर रखा था। उसने सिगरेट जलाई और कश लेने लगा किन्तु उसके कान उन्हीं के समीप थे। उसे सुनाई पड़ा, 'देखे खद्दर वालों के ठाट ? नोट सड़कों पर उड़ाये जाते हैं। "बाबूज आफ नानजौर" भी इनके सामने मात हैं।' यह आवाज रंजना की थी।

सविता ने उसमें नमक मिर्च मिला दिया, 'क्यों न मात दें ? पूरे हिन्दुस्तान के मालिक नहीं हैं ? कहाँ राजा भोज और कहा गंगुआ तेली ? दोनों की कैसी समानता ?'

'यह भी सही है। इनके लिये सब सम्भव है। गाँधी जी के नाम पर और थोड़े दिनों तक मौजें उड़ा लें फिर तो जो हालत होगी भगवान ही मालिक है।' यह सब धीरज के ऊपर कहा जा रहा था।

बेयरा आकर खड़ा हो गया था।

'काफी !' सविता ने आदेश दिया।

बेयरा 'जी' कहकर मुड़ा। आगे धीरज ने रोका—'मेरे लिये भी।'

'बहुत अच्छा साहब।' वह चला गया।

कॉफी आई। उसके बाद कुछ मीठी चीजें चलीं और अन्त में विशेष रूप से कहकर चाट मँगवाई गई। समाप्त होने पर रंजना ने बेयरा को बिल लाने के लिए कहा। धीरज उठा और जल्दी से बढ़कर दोनों बिलों का भुगतान किया और बाहर चला गया।

थोड़ी देर तक प्रतीक्षा करने के उपरान्त भी जब बिल लेकर बेयरा

नहीं आया तो रंजना ने बुलाकर कारण पूछा !

'पेमेन्ट हो गया मेमसाहब।'

'पेमेन्ट हो गया ?'

'जी।'

'किसने किया ?'

'उन्हीं साहब ने जो सामने बैठे हुए थे।'

रंजना सविता की ओर देखकर मुसकराई और खड़ी हो गई, 'ठीक है।' दोनों बाहर निकलीं।

'तुम्हारे पंडित जी तो,' सविता बोली, 'बड़े मज़ेदार आदमी निकले रंजना।'

'देख लो। चिड़िया ऐसी ही फाँसी जाती है जो हर तरह से अपने काबू में हो।'

'लेकिन उस दिन तो तू कुछ और ही कह रही थी ? तेरे······।'

'एक ही बात है डारलिंग। बेवकूफ बनाने का यह मतलब नहीं है कि उसे बाद में धता बता दिया जाय। अगर वह अपने लायक साबित हो सका तो मैरिज कर लूँगी वरना······।'

'वरना बुद्धू कह कर उसकी तकदीर पर उसे रोने के लिए छोड़ देगी ! क्यों ?'

रंजना हंसने लगी, 'और नहीं तो क्या ? तावीज बाँधकर गले में लटकाना नहीं है। जिन्दगी लुत्फ के साथ बिताने के लिए बनी है। आज के जमाने में सलेक्शन होना बहुत जरूरी है सविता और सलेक्शन का तरीका मैं समझती हूँ मेरा वाला ही बेस्ट है। बस अपनी तरफ से थोड़ी सावधानी बरतने की आवश्यकता अवश्य होती है।'

'पर सावधानी बरतने में सावधानी मिल नहीं पाती है।' वह मुसकराई, 'उस समय कुछ भी दिखलाई नहीं पड़ता।'

'मालूम पड़ता है अनुभव पुराना है ?'

दोनों सहेलियाँ हंसने लगीं।

शाम हो गई थी। कनॉट सरकस की रौनक बढ़ गई थी। रूप-रंग निखर आया था। युवतियों के वस्त्रों और शरीर से पाउडर और इत्रों की उड़ती हुई खुशबू फैलने लगी थी। वातावरण में मादकता आने लगी थी। लोग मस्ती में आने लगे थे—संसार को सत्य और अपने को अमर समझ कर वास्तविकता को भूलने लगे थे। रञ्विता के सम्मोहन में जकड़ने लगे थे। रंजना और सविता भी इसी सम्मोहन में भ्रमित धीरज के विषय में बातें करती हुई अंग्रेज़ी सिनेमा हाल के सामने जा पहुँचीं। पिक्चर देखने का विचार नहीं था; परन्तु सविता ने जब पोस्टर देखने की इच्छा प्रगट की तो रंजना उसके साथ अन्दर चली गई। गजब हो गया। सामने धीरज था। आँखें मिलीं और झुक गईं। धीरज कांप उठा। अगर दोनों ने कुछ कह दिया तो बड़ी भद होगी। उस दिन बिल का भुगतान करके उसने लड़कपन का परिचय दिया था। बड़ी गलती हो गई।

धीरज का सन्देह ठीक निकला। रंजना अपने पर्स से पाँच रुपए का नोट निकालती हुई धीरज के समीप आकर बोली, 'यह लीजिए। अगर खैरात बाँटने का शौक है तो और भी लोग हैं। इस तरह······।'

न मालूम धीरज के मुंह से कैसे निकल गया, 'खैरात कहाँ बाँटा है केवल खद्दर वालों की रईसी का प्रदर्शन किया है; अन्यथा आपके कथन की पुष्टि कैसे होती ?'

सविता के ओठों पर मुसकराहट की लकीर फैल गई; परन्तु रंजना ने अपनी गम्भीरता को उसी प्रकार बनाए रखा, 'आपकी इस हमदर्दी के लिए शुक्रिया ! नोट पकड़िये।' उसने हाथ बढ़ा दिया।

'यह नहीं हो सकेगा। अगर लौटाना आवश्यक ही है तो किसी रेस्ट्राँ में बैठाकर चाय पिला दीजिए, मुझे आपत्ति न होगी।' सविता की मुसकराहट से धीरज का साहस कुछ बढ़ गया था। 'आईए चलिये' धीरज बिना उसके चलने की प्रतीक्षा किए चल पड़ा।

सविता ने रंजना को धीरे से खोदा और दोनों बाहर मुसकराती

हुई निकलीं ।

'किस रेस्ट्राँ में चलने का विचार है ?' धीरज ने पूछा ।

'यह क्या तमाशा है ? आप अपना रुपया लीजिए ।'

'जी नहीं ! मैं इस तरह अपना रुपया नहीं ले सकता ।'

'चलिए ! चलिए ! रेस्ट्राँ में ही चलिए ।' सविता बीच में बोल पड़ी 'आओ रंजना ! अपने को आबलीगेशन लौटाने से मतलब है ।'

'लेकिन एक शर्त और है' धीरज ने पुनः कहा, 'आप लोगों को भी संग-संग चाय पीनी होगी ।'

'इम्पासिबिल ।' रंजना बोल उठी, 'यह नहीं हो सकता है ।'

'तब मैं भी जाने से रहा । यह मेरे साथ ज्यादती होगी । मुझे किसी योग्य तो समझा जाय ?'

'आपका भी कहना सही है रंजना ! एहसान वापस करने का मतलब यह तो नहीं हुआ कि किसी के सम्मान पर ठेस पहुँचाई जाय । नहीं पियेंगे लेकिन साथ-साथ बैठे तो रहेंगे ।' सविता रंजना का हाथ पकड़कर खींचती हुई चल दी ।

धीरज ने रास्ते में पूछा, 'मैं अपनी धृष्टता के लिए क्षमा चाहूँगा—आपका नाम ?'

'सविता ।'

'और आपका ?' उसका मतलब रंजना से था ।

'रंजना । और आपका ?'

'मुझे धीरज पंडित कहते हैं ।'

सविता ने जानबूझ कर आश्चर्य प्रगट किया, 'आप ही हैं धीरज पंडित । वाह ! आपका नाम तो बहुत सुन रखा है । आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई । कभी-कभी अनजाने में ऐसी घटनायें घट जाती हैं जिनके विषय में कल्पना करना भी असम्भव होता है । बताइये, न खद्दर की बात उस दिन पिकचर हाल में चलती और न आपसे इतने समीप का सम्बन्ध जुड़ता ।'

'जी हाँ ! ऐसा कभी-कभी हो जाता है ।'

रंजना मौन चल रही थी और उसकी दृष्टि सामने सड़क पर थी । उसने एक बार भी धीरज की ओर सिर घुमा कर नहीं देखा था । जाल बिछाया जाय तो ऐसा बिछाया जाय जिसमें फँसी हुई चीज दुबारा बाहर न निकल सके ।

रेस्ट्राँ आ गया । सब अन्दर जाकर बैठे । चाय मंगाई गई । सब ने पी । रंजना ने कोई जिद नहीं की । क्यों करती ? बीच-बीच में डोर ढीली भी होती रहनी चाहिए । फिर भी उसके भाव-मुद्राओं में वही तिरछापन था और उसने अन्त तक इसे बनाए रखा । धीरज और सविता के बीच वार्ता होती रही । धीरज ने कई बार रंजना को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया ; लेकिन प्रयास असफल रहे ।

चाय समाप्त होने पर सब बाहर निकले । धीरज ने बातों का सिलसिला उठाकर रोकने को सोचा ; परन्तु इसका अवसर दिये बिना रंजना नमस्ते करती हुई मुड़ गई । सविता ने भी ऐसा ही किया । धीरज आँखें फाड़े देखता रह गया । फिर कुछ क्षणों बाद उसे हंसी आ गई और काफी देर तक सिर झुकाये हंसता हुआ चलता रहा ।

१६

यद्यपि धीरज को रंजना के व्यवहारों से कुछ निराशा अवश्य हुई थी पर यह सोच कर कि सुन्दरता में अहंकार प्राकृतिक देन है—वह पुनः संध्या वाली समस्त घटनाओं पर एक-एक करके विचार करने लगा । वह ज्यों-ज्यों सोचता, रोम-रोम में आनन्द की सिहरन फैलती जाती । वह समझता था और उसे विश्वास भी था कि रंजना का व्यवहार चाहे जैसा भी हो ; किन्तु मन में वह भी उसके लिये आकर्षण रखती है ।

कारण, युवतियों के भावों का अनुमान उसे अच्छा था। उन्हें परखने की उसमें क्षमता थी। फिर भी उसने सोचा कि यदि रंजना के हृदय में उसके प्रति आकर्षण नहीं है तो क्या हुआ ? आकर्षण उत्पन्न कर दिया जायेगा। रूनियाँ के साथ भी तो यही स्थिति थी। वह भी तो कुछ नहीं चाहती थी। लेकिन रोज-रोज की छेड़-छाड़ ने ऐसी कशिश पैदा की कि उस ने अपना तन-मन-धन सब अर्पण कर डाला। रंजना भी ऐसी हो जायेगी। अचानक बुद्धि ने सचेत किया—ऐसा सोचना पाप है। यह रूनियाँ के साथ छल होगा। अपने और उसके प्रेम पर कलंक का धब्बा होगा।

क्षण-दो-क्षण के लिये धीरज की अन्तरात्मा ग्लानि से भर उठी। कल्पनायें कुंठित हो गईं। मन खिन्न हो आया। उचित और अनुचित का ज्ञान उमड़ पड़ा। पर यह ज्ञान बहुत देर तक स्थिर न रह सका। उस पर पर्दा पड़ा। कामुक प्रवृत्तियाँ हावी हो गईं। बुद्धि ने दूसरा तर्क रख दिया—इसमें बुराई क्या है ? वह रंजना से विवाह करने नहीं जा रहा है और न उसके साथ किसी तरह की जबरदस्ती कर रहा है। जब सृष्टि के अणु-अणु में परिवर्तन की भावना निहित है तो इसमें अपना क्या दोष ? वह जिस परिवर्तन के लिये लालायित है वह उसकी अपनी इच्छा नहीं वरन् प्राकृतिक देन है। हाँ, सीमाओं का उल्लंघन न हो, इसका ध्यान अवश्य अनिवार्य है।

बात बनानी थी इसलिये बन गई। धीरज को संतोष हो गया। पुन: कल्पना साकार होने लगी। रंजना के रूप का मूल्यांकन होने लगा। यौवन की तुलनात्मक विवेचना होने लगी। नई दुनियाँ बसने लगी।

दस का समय हो रहा था। वह उठा। स्नान किया और कपड़े बदल कर संसद भवन जाने की तैयारी करने लगा। बाहर से आवाज आई 'तार है साहब।'

धीरज हड़बड़ा कर बाहर निकला और चपरासी की कापी पर हस्ताक्षर कर तार पढ़ने लगा। तार उसकी पत्नी रूनियाँ का था। उसे

शीघ्र आजमगढ़ बुलाया था।

वह कमरे में आकर बैठ गया और विचार करने लगा। तार में बुलाने के कारण का कोई संकेत नहीं था। धीरज बड़ी देर तक माथा-पच्ची करता रहा; परन्तु कोई निष्कर्ष नहीं निकाल सका। फिर भी जाना तो था ही। उसने फोन करके गाड़ियों के समय का पता करने के लिये चपरासी से कहा और स्वयं कपड़े आदि ठीक करने लगा।

दिन के बारह बजे कोई गाड़ी जाती थी। धीरज उसी से चल पड़ा। उसका मन बड़ा खिन्न था पर इस खिन्नता का कारण तार नहीं रंजना का अलगाव था। तार ने सब गुड़-गोबर कर दिया; अन्यथा दस-पाँच दिनों में काफी घनिष्ठता बढ़ गई होती। बना बनाया काम चौपट हो गया। मन-ही-मन वह झुंझलाता और खिजलाता रहा। गाड़ी अपनी रफ्तार से बढ़ती रही।

आजमगढ़ पहुँचते ही रूनियाँ से उसका प्रश्न था—'तार क्यों दे दिया ?' ऐसा प्रश्न उसने रूनियाँ को स्वस्थ देखकर ही किया था।

'हमारे बाबू नहीं रहे।' उसकी आँखों से आँसू बह चले।

'इसी के लिये तार दे दिया। हद हो गई तुम्हारी नासमझी की। तार देने के पहले दिल्ली के कार्यों के महत्त्व को भी तो सोच लिया होता ? कब मरे हैं ?'

'लगभग एक हफ्ता हुआ।'

'तुम्हें कैसे सूचना मिली ?'

'गाँव से कुलबुल्ली सिंह आये थे।'

धीरज ने मुँह बनाकर 'ची' उच्चारण किया और कुछ सोचता हुआ बोला, 'अब भी तुम अहीर-की-अहीर रहीं। मुझे बुलाने की क्या आवश्यकता थी।'

रूनियाँ धीरज के कहने की शैली पर बिना ध्यान दिये बोली, 'लोकलाज का ध्यान रखना होता है न ? क्या परसाँ नहीं चलोगे ?'

'क्यों ? परसाँ जाकर क्या करूँगा ? इतना समय नहीं है। दिल्ली

में बहुत से जरूरी काम अटके हुये हैं।'

'यह भी जरूरी काम है। गाँव वाले क्या सोचेंगे? कहेंगे खबर सुनकर भी नहीं आई। बड़ी लाट साहब हो गई है। समय का ठिकाना नहीं। बदलते देर नहीं लगता। आगे-पीछे सब सोचना चाहिये।'

'तो तुम अकेली चली जाओ। मेरे पास फुर्सत नहीं है। मैं शाम वाली गाड़ी से दिल्ली लौट जाऊँगा।'

रूनियाँ ने कुछ ध्यान से धीरज को देखा और सिर झुका लिया, 'ठीक है। अकेली चली जाऊंगी, तुम दिल्ली चले जाओ।' वह उठकर दूसरे कमरे में चली गई।

धीरज दिल्ली नहीं गया। उसने अपने रूखे व्यवहार के लिए रूनियाँ से क्षमा माँगी और बड़ी देर तक इधर-उधर की बातें करके उसे मनाता रहा। रूनियाँ मान गई। स्त्रियों में सबसे बड़ी दुर्बलता है कि वह पुरुष के कपटी हृदय को उस समय बिल्कुल परखना भूल जाती हैं जब वह उनके समक्ष क्षमा प्रार्थी के रूप में आ खड़ा होता है। अपनी क्षणिक श्रेष्ठता के भुलावे में स्वयं अपने विवेक पर पर्दा डाल लेती हैं। फलस्वरूप वे सदैव के लिए पुरुष का दास बन जाती हैं।

दूसरे दिन रूनियाँ को साथ लेकर धीरज परसाँ गया। गाँव में बड़ा स्वागत-सत्कार हुआ। समय-समय की बात है। गाँव वाले रूनियाँ के स्वभाव से बड़े प्रभावित हुए। उसमें उन्हें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं दिखलाई पड़ा था। चाहे विश्वनाथ पाँडे हो या नत्थू चमार, रूनियाँ ने आज भी दोनों को काका ही कहकर सम्बोधित किया था। जैसे पहले किया करती थी। उसमें पैसे की बू बिल्कुल नहीं आई थी।

गाँव के प्रत्येक स्त्री-पुरुष से रूनियाँ ने भेंट की और अपने स्वभाव से पुनः उनके हृदयों में पुराना स्थान बना लिया। धीरज ने भी अपने को पहले जैसा ही प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया था। किन्तु कृत्रिमता और वास्तविकता में बड़ा अन्तर है। बातों-बातों में उसे अपनी बड़प्पन का गीत गाने के लिए विवश हो जाना पड़ता था। वह अपने को रोक

नहीं पा रहा था। वृद्ध रामगुलाम अब भी जीवित थे; परन्तु उन्होंने धीरज से भेंट नहीं की। धीरज के मिलने आने पर भी उन्होंने मिलने से इन्कार कर दिया और उठकर मकान के अन्दर चले गये। धीरज ने भी दुबारा मिलने का प्रयास नहीं किया। वह चिरौरी नहीं कर सकता था।

दो दिन परसाँ में रुकने के उपरान्त तीसरे दिन दोनों आजमगढ़ चले आए। गाँव वालों ने उसी सम्मान के साथ उनकी विदाई भी की। बनी पर सभी मित्र होते हैं।

आजमगढ़ आकर धीरज को रुक जाना पड़ा—कुछ रूनियाँ के कारण और कुछ क्षेत्रीय राजनीतिक समस्याओं के कारण।

× × ×

कनॉट सरकस पर रंजना और सविता के नित्य चक्कर लगते रहे। लेकिन हफ्तों बीत गए उन्हें धीरज पंडित दिखलाई नहीं पड़े। सविता ने एक दिन छेड़ा, 'चिड़िया हाथ से निकल गई डार्लिङ्ग। रूप का जादू बेकार सिद्ध हुआ। अब कोई और पंछी तलाश करो। चारा देने में शायद कोई गलती हो गई।' वह हंसने लगी।

'रंजना ने कभी गलती नहीं की है सविता और न उसके रूप का जादू ही बेकार गया है। पर अवसर मिल गया है जो चाहे कह ले। मैं खामोश हूँ।'

'खामोश तो रहना ही पड़ेगा। जिस रूप के घमंड में तू इतनी चूर है वह सबके लिए महत्त्वपूर्ण नहीं है। अलग-अलग पुरुषों की अलग-अलग मनोवृत्तियाँ होती हैं।

लेकिन उन मनोवृत्तियों में रूप के प्रति आकर्षण की मनोवृत्ति प्रधान है सविता। इसे क्यों भूलती है? बेचारे नारद मुनि भी इससे अपने को नहीं बचा सके थे तो धीरज पंडित की क्या बिसात है?'

'बिसात तो नहीं है फिर भी हफ्तों से उसके दिखलाई न पड़ने का कारण क्या है? जब रूप में इतना खिचाव है तब तो उसे भी मजनू की

भाँति रंजना का नाम रटते हुए कनॉट सरकस की सड़कों पर सवेरे से शाम तक चक्कर लगाते रहना चाहिए।

'लगेंगे चक्कर। घबड़ाती क्यों है? वह भी नजारा देखने को मिलेगा, वक्त आने दे।'

'तू कहती है तो माने लेती हूँ वैसे मुझे विश्वास नहीं है।' सविता रंजना को चिढ़ा रहीं थी।

'क्यों ?'

'तेरा सिद्धान्त सब पर एक जैसा लागू नहीं हो सकता। सभी सुन्दरता के पुजारी नहीं होते हैं। उन्हें दूसरी चीजों का भी कन्सीडरेसन होता है।'

'इससे मैं कब नाही करती हूँ। मगर पहले किसका होता है?'

'किसी का भी हो सकता है? सुन्दरता का पहले हो यह कोई आवश्यक नहीं है।'

रंजना ठठ्ठा मार कर हंस पड़ी, 'कोई ऐसा भी मनुष्य बता सकती है जिसे गुलाब पसन्द न हो? जिसे देखकर प्रशंसा में मुंह से दो-चार शब्द न निकल पड़ते हों ?

सविता निरुत्तर हो गई।

रंजना पुनः बोली, 'लेकिन मैं ऐसे व्यक्तियों के नाम बता सकती हूँ जिन्हें गुलाब की खुशबू से रात की रानी की खुशबू ज्यादा पसन्द है।'

'तो।'

'तो यही कि रूप का आकर्षण प्रधान है और गुणों का गौण। रूप का सम्मोहन सब पर छा सकता है गुणों का किसी-किसी पर। रूप सम्मोहित को जाल में जकड़ना आसान होगा गुण सम्मोहित के मुकाबिले में। उसमें सियोरिटी अधिक है। सिर्फ थोड़ी सी सावधानी बरतने की जरूरत पड़ सकती है।'

सविता मुसकराने लगी, 'तूने तो बिलकुल लेक्चर दे डाला। खैर, थोड़े दिनों में सब सामने आया जाता है।' वह तनिक रुकी, 'लेकिन एक

बात पर सम्भवतः तूने अभी तक विचार नहीं किया है?'

'क्यों ?'

'अगर तेरी तरह उसने भी तफरीह करने की सोच रखी हो तो? हो सकता है वह केवल बाडिली रीलेशन के चक्कर में हो।'

'मुमकिन है। लेकिन इसमें उसे कामयाबी कहाँ हासिल होने को है? मेरे आफिस वाले ओल्ड खूसट की भी तो यही तमन्ना है।' रंजना हंसने लगी।

'अरे हाँ', सविता भी हँस पड़ी, 'उसके बारे में तो तूने बहुत दिनों से कुछ बतलाया ही नहीं। क्या हाल हैं उसके ?'

'क्या बतायें? उसकी दो लड़कियाँ तो मेरी उम्रों की हैं। एक लड़का इन्टर का स्टूडेन्ट है और एक हाई स्कूल का। दो और छोटे-छोटे हैं और एक तीन साल का है। बाबूजी के बाल सफेद हो चुके हैं। आँखों पर चश्मा लग गया है, मगर इश्क फरमाने का शौक अब भी है।'

'इश्क बालों से होता है या दिल से! अभी उसका दिल तो सफेद नहीं हुआ है। जब उसके बदन में खून की खानी है तो इश्क करने में क्या बुराई ?' पुनः सविता हंसने लगी।

'जरूर करे भई। रोकता कौन है? अपना तो हर तरह से फायदा है। दो-चार बार हंसकर बोल दिया, बस छुट्टी हो गई। बाबूजी के लिए इतना पर्याप्त होता है।'

सविता ने चुटकी ली, अभी तो इतना ही पर्याप्त होगा। चारा जो फेंक रहा है। घबड़ा नहीं, बहुत जल्द किसी दिन कमरा बन्द करने वाला है।'

रंजना ने उसके गाल नोच लिए, 'मालूम पड़ता है कमरा खुलने और बन्द होने का अनुभव हो चुका है?'

दोनों हंसने लगीं।

२०

कई दिन और बीत गये। धीरज अभी तक कनॉट सरकस पर दिखलाई नहीं पड़ा था; परन्तु अचानक एक संध्या को दिखलाई पड़ ही तो गया। रंजना ने उसे दूर से देखा और बोल उठी, 'लो आ गये तेरे पंडित।' उसने सविता को दिखलाया।

सविता ने उधर देखा और मुसकराई 'अब ?'

'अब क्या ? पहले तो इतने दिनों बाद आने के कारण का पता करना होगा जिससे भविष्य में तू मेरी बातों को पत्थर की लकीर समझे।'

'बिल्कुल। चल अभी तेरे सामने पूछे लेती हूँ।'

'ऐसे नहीं पगली। तू तो सब काम चौपट कर देगी।'

'फिर ?'

'पहले हम लोग बिना उसकी ओर देखे उसके सामने से निकल चलेंगे। देख, उसे बातें करने की हिम्मत पड़ती है या नहीं। अगर बातें नहीं कीं तो हम लोग सामने वाले रेस्ट्रां में चलकर बैठ जायेंगे। वहाँ वह पीछे-पीछे जरूर आयेगा। तब तू जिस तरह से चाहे बातें कर लेना।'

'और तू ?'

'मैं बिल्कुल नहीं बोलूंगी। अगर उसने नमस्ते कर लिया तो कर लूंगी वरना खामोश बैठी रहूँगी। अभी डोर कसी रहनी चाहिए।' मुसकान की रेखायें उसके अधरों पर फैल गईं।

दोनों आगे बढ़ीं और आपस में बातचीत करती हुई इस प्रकार

धीरज के सामने से निकल गईं जैसे उसे देखा ही न हो। धीरज ज्यों-का-त्यों खड़ा रह गया। वह चाह कर भी कुछ कह न सका। शब्द मुँह तक आकर रुक गये। यद्यपि उसने भी दोनों को दूर से देख लिया था और निश्चय किया था कि समीप आने पर नमस्ते करके कुछ बातें करेगा पर वह कर न सका। गला रुंध गया और बहुत प्रयत्न करने पर भी मुँह से शब्द न निकल सके। दोनों सामने से निकल गईं। वह खड़ा का-खड़ा रह गया। उसे अपने ऊपर बड़ी झुंझलाहट आई। वह अपने को धिक्कारता हुआ उनके पीछे चल पड़ा। वह मन-ही-मन सोच रहा था कि अगर दोनों रेस्ट्राँ में जाकर बैठ गईं तो उसका काम बन जायेगा।

दोनों ने रेस्ट्राँ में प्रवेश किया। धीरज के मन का हो गया। वह पाँच मिनट रुक कर अन्दर गया।

'देख ले, रंजना का नाम रटते हुये तेरे पंडित जी तशरीफ का टोकरा ले आये।'

सविता मुसकराई, 'आ भी इधर रहे हैं।'

'तो और किधर जायेंगे। बाहर तो बेचारे को कुछ कहने की हिम्मत नहीं हुई। अब पूरी तैयारी के साथ आ रहे हैं।'

'चुप रह।' सविता ने धीरे से कहा और खड़े होकर नमस्ते किया 'आइये पंडितजी। आप तो उस दिन से ऐसे गायब हुये कि फिर दिखलाई तक नहीं पड़े।'

धीरज ने हाथ जोड़े और फिर रंजना की ओर हाथ जोड़ता हुआ वह बैठ गया। रंजना ने भी हाथ जोड़ कर नमस्ते कर लिया। बोली कुछ भी नहीं।

सविता ने पुनः पूछा, 'क्या कनॉट सरकस का आना कम कर दिया ?'

'जी नहीं। एक जरूरी काम से बाहर जाना पड़ गया था। राज-नीति का चक्कर तो आप जानती ही हैं बिल्कुल चपरासियों वाली स्थिति है। हर वोटर मुझ से हर काम कराने के लिये अपना जन्म सिद्ध अधि-कार रखता है। कल आया हूँ।'

सविता हंसने लगी, 'डीमोक्रेसी है न साहब।'

'आप से सच कहता हूँ', धीरज ने रंजना की ओर देखा, 'लोग समझते हैं एम० पी० हो जाने में बड़ा सुख है ; किन्तु मैं आप से क्या बताऊँ, कुत्ते से भी अपनी जिन्दगी बदतर है। जो आता है वही धौंस बताता जाता है। कोई कहता है मेरा यह नहीं हुआ, यह नहीं हुआ, कोई अगले चुनाव में वोट न देने की धमकी देकर चला जाता है जब कि न दिन को बैठने की फुर्सत है और न रात को सोने का इत्मिनान। हर समय किसी-न-किसी के लिये दौड़ते रहना होता है।'

'लेकिन इसमें आपका बुरा मानना बेकार है। पब्लिक ने आपको इसीलिये चुनकर भेजा है। उनके लिये आप नहीं परेशान होंगे तो और कौन होगा ?' सहानुभूति दिखलाने के स्थान पर रंजना ने आलोचना कर दी।

सविता ने धीरज का पक्ष लिया, 'फिर भी परेशानी की कोई सीमा होती है न ? वोट देने का मतलब यह तो नहीं हुआ कि पंडितजी ने अपने को उनके हाथों बेच रखा है।'

'बेच रखने का क्या सवाल है ?' रंजना का उत्तर था 'जितनी जिस की जिम्मेदारी है उसका निभाना आवश्यक है। राजनीति में पड़कर पब्लिक को दोषी बताना या अपनी परेशानियों का उलहना देना कोई तुक नहीं रखता। या तो आप पब्लिक लाइफ में आयें नहीं और अगर आयें तो शिकवा शिकायत न करें।'

'अजीब बातें करती है रंजना। पब्लिक लाइफ में आने का यह तो अर्थ नहीं हुआ कि पंडितजी अपने परिवार या स्वयं का ध्यान ही न रखें ? भावनायें सब के पास हैं। कल्पनाओं का संसार सभी बनाते-बिगाड़ते हैं।'

'बिल्कुल नहीं। यही तेरी भूल है। एक सोशल वरकर को अपनी दुनिया से क्या लगाव ? उसकी कोई कल्पना नहीं। उसके लिये अपना कहने को कुछ भी नहीं। यही उसके जीवन का निचोड़ है।'

'तो तेरे कहने का अर्थ निकला कि अगर पंडितजी को पब्लिक के बीच रहना है तो अपनी बीबी-बच्चों से सम्बन्ध तोड़ लें और बिना किसी शिकवा शिकायत के रात-दिन बैलों की तरह सेवा कार्य में जुटे रहें ?' इतनी देर बाद सविता असली बात पर आई।

'बिल्कुल। अगर ईमानदारी से जनता की सेवा करनी है तो।'

इसके पूर्व कि सविता कोई उत्तर दे, धीरज बोल उठा, 'बात राज-नीति की मैंने चलाई थी और बहस आप लोगों में होने लगी। सविताजी, किसी हद तक रंजनाजी का कहना भी ठीक है। अगर ईमानदारी से सेवा कार्य करना है तो अपने स्वार्थों और अभिलाषाओं की बलि देनी पड़ेगी।' धीरज ने रंजना की चापलूसी की।

'तो क्या आपने अभी तक विवाह नहीं किया है ?' सविता को यही जानना था।

धीरज ने झूठ बोल दिया 'जी नहीं। और न अब आगे करने की सोचूँगा ही।'

'वाह रंजना की बात इतनी जल्दी असर कर गई। आप तो बड़े वफादार आदमी निकले।'

'पर दुःख है सविताजी कि इतनी उम्र', धीरज ने कुछ खुल कर कहा, 'बीत जाने पर इस वफादारी का, अभी तक उचित मूल्यांकन नहीं हो सका है।' उसने रंजना को देखा।

रंजना मौन रही। पर उसके नेत्र धीरज के नेत्रों में एक सेकेन्ड के लिये अवश्य समा गये थे। धीरज ने सिर झुका लिया। उसे कुछ मिल गया था।

बातचीत के दौरान में कई बार बेयरा आकर लौट चुका था। पुनः उसे खड़ा देखकर कहा, 'कॉफी।' वह मुड़ने को हुआ, 'सैन्डविचेज और पेस्ट्रीज भी लेते आना।'

'बहुत अच्छा साहब।' वह चला गया।

कॉफी आई। सविता ने बनाई और फिर चुस्की के संग-संग सिनेमा

जगत की बातें होने लगीं। जब तक कॉफी समाप्त नहीं हुई वार्ता चलती रही। अन्त में बिल आया। रंजना ने झट से अपने पर्स से पाँच रुपये का नोट निकाल कर प्लेट में रख दिया।

'जी नहीं। यह मेरे साथ अन्याय होगा' धीरज ने रंजना का नोट उठा लिया और अपना नोट देता हुआ बोला, 'ले जाओ।'

बेयरा लेकर चला गया।

'लीजिये।' धीरज ने रंजना की ओर नोट बढ़ा दिया।

'क्या यह मेरे साथ अन्याय नहीं है ?'

'नहीं। आपकी ओर से और किसी दिन रहेगा।'

रंजना ने नोट ले लिया। बेयरा शेष पैसे देकर चला गया था। तीनों उठ पड़े।

बाहर आकर रंजना बोली, 'थैंक्स फार योअर टी। नमस''''''।'

'तो क्या कल पुन: भेंट होने की आशा करूँ ?' धीरज को रंजना की शीघ्रता बुरी लगी थी। वह अभी साथ-साथ रहना चाहता था।

'कोई ठीक नहीं। नमस्ते।' उसने हाथ जोड़े। सविता ने भी हाथ जोड़े और दोनों मुड़ गईं।

धीरज का हृदय बिंध कर रह गया। मन कह उठा—बड़ी नीरस और घमंडी मालूम पड़ती है।

२१

रंजना लाहौर की रहने वाली थी। हिन्दुस्तान-पाकिस्तान का बटवारा होने पर किसी प्रकार अपने पिता के साथ बचकर आ गई थी। लाहौर स्थित सम्पत्ति के मुआवजे में जो धन भारतीय सरकार द्वारा उसके पिता को प्राप्त हुआ था उससे उसके पिता ने एक छोटा-सा मकान कनॉट सरकस के समीप खरीद लिया था। शेष बची हुई धन-राशि से

वह कोई व्यापार करने वाला था कि अचानक दो दिन के ज्वर में उसकी मृत्यु हो गई। रंजना इतने बड़े संसार में अकेली रह गई। आगे-पीछे कोई न था।

रंजना ने बी० ए० तक शिक्षा पाई थी। यौवन के साथ सुन्दरता भी अद्वितीय थी। उसने नौकरी करने का निश्चय किया। टाइप सीखने लगी। साथ-साथ शॉर्टहैंड भी। छः महीने के भीतर-भीतर उसने अच्छी स्पीड बना ली। तब उसने विज्ञापनों को देखकर सरकारी और गैर-सरकारी नौकरियों के लिए प्रार्थना-पत्र भेजने आरम्भ किए। सौभाग्य से मिनिस्ट्री आफ हेल्थ से इन्टरव्यू लेटर आ गया। स्वयं डाइरेक्टर महोदय को एक स्टेनो-टाइपिस्ट की आवश्यकता थी। इन्टरव्यू हुआ। रंजना रख ली गई। वह नौकरी पर आने-जाने लगी।

सविता उत्तर प्रदेश के किसी पूर्वी जिले की रहने वाली थी। उसके कथनानुसार उसके भी आगे-पीछे कोई नहीं था। जो नाते-रिश्तेदार थे उनसे भी सम्बन्ध तोड़ लिया था। कब, क्यों और किस प्रकार वह अपना घर छोड़ कर दिल्ली चली आई थी—इसे ईश्वर और उसके अतिरिक्त दूसरा नहीं जानता था। अधिक घनिष्टता बढ़ने पर रंजना ने दो-एक बार इस रहस्य की जानकारी के लिये अपनी इच्छा व्यक्त की थी पर सविता ने प्रत्येक बार डबडबाई आँखों से न पूछने का ही अनुरोध-सा किया था। रंजना ने फिर कभी नहीं पूछा था।

सविता ने दिल्ली में रहकर बी० ए० और एम० ए० की डिग्री ली थी और वहीं लड़कियों के एक कालेज में अध्यापिका हो गई थी। अब वह हिन्दी में पी० एच० डी० की तैयारी कर रही थी और थीसिस पर काफी काम भी हो चुका था। पहले वह लड़कियों के होस्टल में रहा करती थी पर अनायास एक दिन कनॉट सरकस पर रंजना से परिचय तथा परिचय के उपरान्त धीरे-धीरे बढ़ती घनिष्टता ने ऐसी सहृदयता उत्पन्न की कि वह होस्टल छोड़ रंजना के घर आ गई। तभी से दोनों साथ-साथ रहने लगी थीं। सविता भी अभी अविवाहित थी और देखने-

सुनने में भी अच्छी थी। पुरुषों की ललचाई दृष्टि उसे भी घूरती थी, कुछ कहने को चाहती थीं; परन्तु उसने कभी इन्हें बढ़ावा नहीं दिया। क्यों नहीं दिया—यह कारण अज्ञात है। हाँ, बातों के सिलसिले में एक बार रंजना के पूछने पर उसने कहा था, 'मुझे पुरुषों से घृणा है। उन पर तनिक भी विश्वास नहीं रह गया है।'

'तो शायद तुझे उनके सम्पर्क का अनुभव हो चुका है?' रंजना ने हंसी की थी।

'हुआ न होता तो कहती कैसे? ठोकर खाकर ही आँखें खुलती हैं। खैर, जीवन के उस चैप्टर को मैंने पूर्णतः विसार दिया है। अब उसका जिक्र ही क्या?'

'यह तो सही है लेकिन सभी एक जैसे नहीं होते सविता। पूरी जाति पर इस तरह का आरोप लगाना उचित नहीं है?'

'अभी तू उन्हीं के पक्ष में बातें करेगी लेकिन ठोकर लग जाने दे फिर पूछूंगी? तुझे इसका ज्ञान नहीं है। स्त्रियों के सम्बन्ध में पुरुषों की एक धारणा है और वह धारणा कितनी ओछी है इसका अन्दाजा उस समय लगता है जब विवाह की बेड़ियों में अथवा किसी कारणवश पुरुषों के पंजे में स्त्रियाँ जकड़ जाती हैं, शुरू में पुरुष का रूप जितना भोला दिखता है बाद में उतना ही कठोर और हत्यारा हो जाता है।'

'तो फिर शादी करना गुनाह है?'

'मेरे विचार से।'

'देन व्हाट एबाउट सेक्स! उसके लिए कौन-सा रास्ता......।'

'वही जो तूने अपनाया है।'

'मगर यह अन्त तक काम नहीं देगा सविता। इसका रिज़ल्ट बुरा है।'

'बुरा है!'

'बहुत बुरा है।'

'फिर इसे करती क्यों है?'

'परखने के लिए! जिससे पुरुष के दोनों रूपों का सही-सही अनुमान लग सके। अगर पुरुष स्त्री पर हावी हो सकता है तो क्या स्त्री, पुरुष पर हावी नहीं हो सकती है?'

'तो सम्भवतः तू ऐसे ही पुरुष की खोज में है?'

'हाँ।'

'पर मिलना कठिन है।'

'क्यों?'

'पुरुषों में चिड़ी के गुलाम कम मिलते हैं।'

दोनों हंसने लगीं।

वार्तालाप का सिलसला बदला और दूसरी तरह की बातचीत होने लगीं। रंजना और सविता की यह बातचीत धीरज से भेंट होने के पहले की है। वक्त गुजरता गया। रंजना की खोज चलती रही। फिर अनजाने में एक दिन रंजना को चिड़ी का गुलाम मिल ही तो गया।

× × ×

अपनी उत्सुकता न व्यक्त करने के अभिप्राय से ही उस दिन रंजना ने चलते समय धीरज से 'ठीक नहीं है' कहा था। वैसे उसे दूसरे दिन कनॉट सरकस तो आना ही था और धीरज भी उससे मिलने आयेगा इसकी भी उम्मीद थी। वह दूसरे दिन सविता के संग कनॉट सरकस आई। जब तक एक युवती में तड़पाने की, पागल बना देने की क्षमता न हो तब तक उसके जीवन की सार्थकता नहीं है। उसके नारीत्व का महत्व नहीं है।

यद्यपि धीरज के विचारों से रंजना का आना सन्देहजनक था फिर भी वह दूसरे दिन आया। आता क्यों नहीं? लगी का रोग बड़ा विचित्र है। चैन से बैठने नहीं देता। ओडियन सिनेमा के सामने संध्या के लगभग छः बजे धीरज की कार आकर रुकी। वह उतरा और तत्क्षण उसके नेत्र रंजना को ढूंढने में तल्लीन हो गए।

कई चक्कर लगाने पर भी धीरज को रंजना नहीं मिली। जब की

एक रेस्ट्राँ के कोने वाली सीटों पर बैठी हुई रंजना और सविता की आँखें उसे देख रही थीं। सविता धीरे से बोली, 'अब चल! कई बार चक्कर लगा चुका है। कहीं निराश होकर लौट न जाय।'

'अभी रात के नौ बजे तक इसी तरह चक्कर लगते रहेंगे पगली। तुझे इसका क्या अनुभव? रंजना का जादू कोई मामूली जादू नहीं है।'

सविता ने गर्दन हिलाई, 'शुरू में सब यही कहती हैं?'

'बस कहती हैं उसके अनुसार करती नहीं हैं।' अगर काम करे तो वह नौबत न आए जिसकी तू शिकार हो चुकी है।'

सविता ने उसकी जाँघ में चिकोटी काट ली, 'रात में सपना देखा है क्या? दुष्ट! मैं क्यों किसी का शिकार होने लगी? चल उठ। बड़ी आई है।' वह खड़ी हो गई।

दोनों बाहर निकलीं और उसी ओर को चल पड़ीं जिधर से धीरज के लौटने की आशा थी। अनुमान सही निकला। कुछ दूर जाने पर धीरज से भेंट हो गई। एक दूसरे से नमस्ते हुआ। धीरज के मुंह से निकल पड़ा, 'आज तो आप लोगों ने हद कर दी। घंटों से चक्कर लगा रहा हूँ पर दर्शन बदा हो तब न?'

'लेकिन आज तो आने की कोई बात नहीं थी।' रंजना के शब्द थे।

'बात न होने से', सविता बोली, 'क्या हुआ? आशा भी तो कोई चीज है और फिर दर्शनों की आशा। इसकी व्याकुलता बड़ी विचित्र होती है।'

'आपने लाख रुपये की बात कह दी सविताजी। यहाँ तो ढूंढते ढूंढते पैरों की हालत खस्ता हो गई है और रंजनाजी कह रही हैं कि आने की कोई बात नहीं थी।'

रंजना तनिक ओठों के भीतर मुसकराई और सविता की ओर देख कर बोली, 'हम लोगों ने अपने महत्व को इतना नहीं आँका था वरना पंडितजी को आज यह कष्ट न मिलता।'

धीरज ने जैसे कुछ आह भर कर कहा हो, 'भाग्य का फेर है रंजना

जी और क्या कहा जाय?'

'यहाँ तक स्थिति आ गई है?' 'रंजना ने बुद्धू बनाया, 'सविता, तेरे पंडितजी तो आर्ट की दुनियाँ में ही चक्कर लगाते हैं। अब क्या होगा? यह मर्ज बड़ा बुरा है। इसकी तो दवा ढूंढे नहीं मिलती है।' वह हँसने लगी 'आप दर्शनो के चक्कर में कहाँ पड़ गये धीरज साहब? कल्पनाओं के संसार में दुःख के सिवा सुख नहीं है। आईये चलिये, आपको कॉफी पिलाऊँ। पहले थकान तो दूर हो।'

'आईये चलिये।' सविता ने भी समर्थन किया।

तीनों एक रेस्ट्राँ में जाकर बैठ गये। कॉफी के लिये आर्डर दे दिया गया। धीरज कुछ कहने के लिये सोच रहा था पर क्या कहे, समझ नहीं पा रहा था। रंजना ने उसकी बातों को जिस प्रकार हवा में उड़ाकर अर्थ का अनर्थ कर दिया था उससे उसके मन में तनिक उलझन उत्पन्न हो गई थी। बहुत साहस बटोरने के उपरान्त तो वह अपनी भावनाओं को व्यक्त कर पाता था; परन्तु रंजना ने कभी भी उस पर ध्यान नहीं दिया था।

सविता ने मौनता भंग की, 'आप तो एक बारगी चुप हो गये? क्या सोचने लगे?'

'कुछ नहीं। रंजनाजी की बातों पर विचार कर रहा हूँ। सोच रहा हूँ कि कल्पनाओं की दुनिया से अब छुटकारा कैसे मिलेगा?'

'कमाल है साहब। आप तो रंजना की एक एक बात को गाँठ बाँधने लगे हैं। इसके व्यक्तित्व ने आप पर गजब का प्रभाव डाला है।'

'इसमें क्या शक? पर तकदीर साथ दे तब तो।'

'सही है। तकदीर का ही तो फेर था कि मजनू बेचारा जिन्दगी भर लैला की गलियों की खाक छानता रह गया और उसे वह न मिल सकी।'

'उदाहरण बड़े तुक की दे लेती है सविता। तेरा और पंडितजी का साथ अच्छा हुआ है।' रंजना मन ही मन सविता की वाक चातुरी पर

प्रसन्न हो रही थी।

'पर प्रभावित तो तेरे व्यक्तित्व से हैं। तेरी एक-एक बात को गाँठ बाँध कर उसी के अनुसार चलने का प्रयत्न कर रहे हैं। तूने पता नहीं कौन-सा मंत्र फूंक दिया है।'

'एक्सीलेन्ट सविता एक्सीलेन्ट। बातों में तेरा भी जवाब नहीं है।' वह ठहाका मार हँस उठी।

'इसमें हँसने की क्या बात है? अभी-अभी तो पंडितजी यही बात कह रहे थे। मैंने कोई अपनी तरफ से तो जोड़ नहीं दिया है।'

'तो मैंने कब कहा है कि तूने जोड़ दिया है?'

'फिर हँसने क्यों लगी?'

'इसलिये कि तुझे एक्स्पलेन करने का तरीका अच्छा मालूम है। खैर, खुशी है कि पंडितजी ऐसे योग्य व्यक्ति की निगाहों में मेरा यह स्थान तो बन सका। कोई पारखी तो मिला।'

धीरज कुछ कहने जा रहा था कि बेयरा कॉफी लेकर आ गया। बात रुक गई। रंजना ने कॉफी बनाकर एक प्याला धीरज की ओर दूसरा सविता की ओर खिसका दिया, 'और क्या चीज मँगाई जाय?' उसका प्रश्न धीरज से था।

'कुछ नहीं! इच्छा नहीं है।'

'तकल्लुफ किसी और दिन के लिये रखिये। आज तो खाना ही पड़ेगा। बोलिये क्या मंगाऊँ?'

'मैं ने कहा नहीं बिल्कुल तबीयत नहीं है वरना आप की बात टालता नहीं। मैं क्षमा चाहूँगा।'

सेकेन्ड दो सेकेन्ड के लिये निस्तब्धता आ गई। तत्पश्चात रंजना बोली, 'आप रहने वाले कहाँ के हैं, धीरज बाबू?'

'आजमगढ़ के। बनारस से कुछ आगे।'

'मुझे मालूम है। वैसे दिल्ली आप को बहुत पसन्द नहीं है?'

'नहीं तो। लेकिन विवशता यह है कि आजमगढ़ मेरा राजनीतिक

क्षेत्र है।'

'आजमगढ़ में आपके कौन-कौन हैं?'

'कोई नहीं। मैं अकेला हूँ।'

रंजना को संतोष हुआ। कॉफी समाप्त हुई। बेयरा को पैसा दिया गया और सब उठ खड़े हुये। बाहर आकर रंजना ने कहा 'कल आईयेगा अगर कोई खास काम न हो तो। नमस्ते।' वह मुड़ गई।

२२

रंजना के डाईरेक्टर साहब शरीर से बुजुर्ग थे दिल से नहीं। उनमें जवानी की रवानी अब भी मौजूद थी। वासना आयु के घटने के साथ-साथ बढ़ती जा रही थी। इन्द्रियाँ कामुक हो गई थीं और भोग-विलास में अधिकलिप्त रहना चाहती थीं। परिणामस्वरूप बगुला भगत की भाँति उन्होंने शिकार करना आरम्भ कर दिया था और उन्हें शिकार मिल भी रहा था। मिलता क्यों न? इस बीसवीं सदी में रुपये के बल पर कौन-सी वस्तु अप्राप्य है। जनसाधारण में फैली हुई बेकारी, अर्थाभाव एवं फैशन की पूर्ति की इच्छाओं ने संसार के समस्त उचित और अनुचित दृष्टिकोण को बदल दिया है। लोगों की भावनायें बदल गई हैं, इन्सानियत के स्थान पर हैवानियत आ गई है और चरित्र जिसकी प्रशंसा और महत्व के वर्णन में हजारों ग्रन्थों की रचना हो चुकी है—उसको नये रूप से आँका जाने लगा है। पुराने आदर्शों को थोथा और रूढ़िवादी कहा जाने लगा है।

डाईरेक्टर महोदय के पास धन के साथ-साथ पद भी था। वह जीविका दे सकते थे, गरीबी से छुटकारा दिला सकते थे और किसी की रंगीन दुनियाँ को अधिक रंगमय बनाकर चार चाँद लगा सकते थे।

किस्सा कोताह, उन्हें वे सारे साधन उपलब्ध थे जिनके द्वारा उनकी सारी लालसायें सरलतापूर्वक तृप्त हो सकती थीं और हो भी रही थीं। उन्हें नवीन सुन्दरियों का बीसवीं शताब्दी वाली सुन्दरियों का नित्य आलिंगन मिल रहा था और बिना रोक-टोक मिल रहा था। जीवन के एक-एक क्षण उल्लास सहित बीत रहे थे। बुढ़ापे में जवानी का मजा आ रहा था बल्कि कुछ अधिक।

पर इधर कुछ महीनों से उनकी रंगरेलियों में कमी आ गई थी, जो लड़की पहले स्टेनो-टाइपिस्ट थी वह नौकरी छोड़कर चली गई थी। और तब से वह स्थान रिक्त पड़ा हुआ था। डाईरेक्टर महोदय ने तमाम लड़कियों के इन्टरव्यू लिये; परन्तु किसी को रखा नहीं। कोई चीज पसन्द नहीं आई। कुछ समय और बीता। अन्त में एक दिन रंजना का भी नम्बर आ गया। उसे देखते ही डाईरेक्टर महोदय के दिल की मुरझाई कली खिल उठी। शरीर के अंग-अंग झनझना उठे। वह रख ली गई।

सृष्टि निर्माता की विचित्रता सराहनीय है कि उसने नारी को पुरुष की प्रत्येक मनोदशा को समझने की क्षमता दी है पर पुरुष को नहीं। शीघ्र ही रंजना डाईरेक्टर साहब की मन:स्थिति को समझ गई पर नासमझ बनी रही। वह मन ही मन मुसकराई और अपना उल्लू सीधा करने के विचार से उन्हें बढ़ावा देने लगी। उसने समझ लिया था कि बुड्ढा पुराना पापी है। उसके संग बड़ी सतर्कता बरतने की आवश्यकता है; अन्यथा किसी भी दिन नौकरी हाथ से निकल सकती है।

डाईरेक्टर महोदय धीरे-धीरे डोरे डालने लगे और बढ़ते गये। एक दिन उन्होंने डिक्टेशन देने के लिये बुलाया, तो पूछ बैठे, 'अभी तुमने शादी नहीं की है रंजना ?'

'नो सर।'

'और आगे क्या इरादा है ?'

'नहीं करने का।'

'क्यों ?'

'बेकार है सर। शादी में बड़ी परेशानी है।'

'लेकिन परेशानी के साथ-साथ आराम भी तो है।'

'बिल्कुल नहीं सर। मैं तो समझती हूँ कि अगर आपने भी शादी न की होती तो शायद दुनिया अधिक इनज्वायबिल और पीसफुल साबित होती।' रंजना बढ़ावा दे रही थी।

'तुम्हारा ख्याल सही है। तुमसे क्या छिपाऊँ ? कभी-कभी तो ऐसी स्थिति हो जाती है कि मन चाहता है कि सब कुछ छोड़कर कहीं दूर निकल जाऊँ मगर दुनियादारी को सोच कर फिर रुक जाना पड़ता है।' डाईरेक्टर महोदय जाल बिछा रहे थे।

'खैर, आपके लिए ऐसा करना उचित नहीं है।' रंजना उनकी आँखों में आँखें डालती हुई बोली, 'वैसे मैं समझती हूँ अगर औरत होशियार हो तो यह नौबत नहीं आ सकती।'

'होशियार हो तब न रंजना। मेरी बीबी ने तो मेरा जीवन नाश कर दिया।' वह रुके और मुँह लटका कर कुछ देर तक सोचते रहने के उपरान्त बोले, 'तुम्हारा इरादा मुझे पसन्द आया। लेकिन इसे तुम अन्त तक निभा सकोगी, इसमें मुझे शक है।'

'क्यों ?'

'भई, इन्सान के पास कई तरह की भूखें हैं जिनमें एक सेक्स की भी भूख है। उसकी पूर्ति तुम कैसे कर पाओगी ?'

'वाह सर। आपने भी क्या बात कह दी ? आज के जमाने में उसकी भी कोई दिक्कत है। सैंकड़ों रास्ते हैं।'

तब तक किसी बाबू के आने का संकेत मिला।

'यस। कम इन।' डाईरेक्टर ने अनुमति दी।

बाबू कागजों पर हस्ताक्षर के लिये आये थे। उन्होंने फाइलें सामने रख दीं। डाईरेक्टर ने हस्ताक्षर कर दिये। वह लेकर चले गये।

पुन: वार्ता आरम्भ हुई, 'शाम का तुम्हारा क्या प्रोग्राम रहता है ?'

'कोई खास नहीं ! अपनी एक सहेली है उसी के संग घूमा करती हूँ।'

'यों ही या किसी अभिप्रायवश ?' डाईरेक्टर महोदय उँगली पकड़ने के उपरान्त कलाई पकड़ने की भूमिका बना रहे थे।

'दोनों ही समझ लीजिये सर। अभिप्राय के अनुकूल पात्र होने पर ही तो अभिप्राय की पूर्ति हो सकेगी।'

'एकज्याक्टली। तो शायद अभी पूर्ति नहीं हो सकी है ?'

'और न हो पायेगी।'

'बुड्ढे को मन ही मन संतोष मिला, 'क्यों ?' उसने रंजना के नेत्रों में अपने नेत्रों को डालने का प्रयास सा किया।

'दिल्ली ऐसी ही जगह है। यहाँ के लोग विश्वासपात्र नहीं हैं।'

'हो सकता है ; लेकिन सबको एक जैसा कैसे कह सकती हो ?'

रंजना समझ गई कि बुड्ढा अपनी वफादारी का स्वांग भरकर जताना चाहता है कि वह विश्वासपात्र है और उस पर भरोसा करके अभिप्राय की पूर्ति की जा सकती है। रंजना ने भी उसी प्रकार का उत्तर दिया, 'सर यक्सेप्सन तो हर जगह होते हैं ; लेकिन वहाँ तक पहुँचने की अपनी औकात कहाँ है ? झल्ली ढोने वाला अगर कार रखने का ख्वाब देखे तो उसकी नादानी है न ?'

डाईरेक्टर महोदय हंसने लगे, 'तो तुमने अपने को झल्ली वालों की श्रेणी में रख कर मुझे यक्सेप्सन की कटागरी में रख दिया ?'

'बिल्कुल सर। इसमें क्या दो रायें हो सकती हैं ?'

डाईरेक्टर महोदय जोर से हंस पड़े, 'तुम्हारे अन्दर बड़ा भोलापन है रंजना।' फिर उन्होंने धीमे स्वर में कहा, 'शायद तुम्हें अपनी खूबसूरती का अन्दाज नहीं है। तुम्हारे एक इशारे पर सारी दिल्ली नाच सकती है मेरी क्या बिसात ?'

'चलिये सर', रंजना ने विशेष आकर्षणयुक्त भावों से कहा, 'आप भी कैसी बातें करते हैं ?' वह खड़ी हो गई।

'अरे, खड़ी क्यों हो गई ? बैठो-बैठो।'

'बहुत देर हो गई है सर। अभी फिर डिक्टेशन लेने आना ही होगा तब बैठ जाऊँगी।'

'बैठो जी। किसी को अभी प्यास की तलब है और तुम उसे दो घंटे बाद पिलाने को कह रही हो। यह भी कोई तुक है ?'

रंजना मन ही मन मुसकराती बैठ गई।

'आज शाम को तुम्हारा······।'

'हाँ। अपनी उसी फ्रेंड के साथ, उसके किसी फ्रेंड के घर जाना है। कल तय हो गया था।' डाईरेक्टर महोदय से रंजना अधिक चतुर थी।

'और परसों ?'

'परसों कोई प्रोग्राम नहीं। बिल्कुल फ्री रहूँगी। आप कोई प्रोग्राम बनाना चाहते हैं ?'

'सोच रहा हूँ। अगर तुम चलने को कहो तो ?'

'कहाँ ?'

'कुतुब मीनार। इधर हफ्तों से बाहर निकलना नहीं हुआ है। शहरी हवा से दिमाग भन्ना उठा है। उधर चलेंगे तो कुछ शान्ति मिलेगी। रात भी चाँद वाली है। नेचुरल बीउटी अच्छी रहेगी।'

'जी हाँ। चाँदनी रात में वह जगह देखने लायक होती होगी। तो मैं आपको कहाँ मिल जाऊँ ? मेरे घर तक तो आप की कार पहुँच नहीं सकती वरना आप वहीं आ जाते।'

'कनॉट सरकस पर मिल जाओ।'

'वह जगह ठीक नहीं है सर। आप दरियागंज के आगे बड़े दरवाजे के पास आ जाईये। मैं वहीं खड़ी रहूँगी। या कहिये तो सफदरजंग के पास मिलूँ।'

'सफदरजंग के पास मिलो। वही रास्ता भी है। मैं ठीक सात बजे आ जाऊँगा।'

'अच्छी बात है सर। मैं वहीं मिलूंगी।' फिर वह ओठों पर मुस्कान

बिखेर कर बोली, 'अब जाने की इजाजत है ?'

डाईरेक्टर साहब ने भी मुसकरा कर 'हाँ' कह दिया।

'मैं घर जा रही हूँ।'

'क्यों ?'

'काम करने का मूड नहीं रहा।'

डाईरेक्टर महोदय ने सिर हिला दिया। रंजना चली गई। उसके जाने के बाद उन्होंने अंगड़ाई ली और कुरसी पर ऊँगते हुये कल की कल्पना करने लगे। प्लान बनाने लगे।

× × ×

दूसरे दिन ठीक शाम को सात बजे डाइरेक्टर महोदय निश्चित स्थान पर मौजूद थे। लेकिन रंजना नहीं थी। उन्होंने सोचा—आ रही होगी। सात के साढ़े सात हो गये। रंजना नहीं आई। डाईरेक्टर महोदय मोटर से उतर कर टहलने लगे। कोई देखकर क्या कहेगा—इसकी भी तो चिन्ता थी। पौने आठ हो गये। उनकी उलझन बढ़ गई। आशा निराशा में बदलने लगी। फिर भी वह टहलते रहे। शायद किसी कार्य-वश उसे कहीं जाना पड़ गया हो; अन्यथा उसके न आने का कोई कारण नहीं हो सकता है। आठ बज गये। रंजना नहीं आई। डाईरेक्टर महोदय अब पूर्णतय: निराश हो गये। बेचारे कहाँ तक टहलते ? हताश मन वह मोटर में जा बैठे। फिर भी मिनट-दो-मिनट प्रतीक्षा करने के उपरान्त ही गाड़ी स्टार्ट की।

रातभर मन बड़ा खिन्न रहा। पत्नी से भी कम बातें कीं और जल्दी ही भोजन करके बिस्तरे पर जा लेटे; लेकिन नींद बड़ी रात गये पर आई थीं। दिल में बेहद जलन थी। कामुकों के विषय में यों भी कुछ कहना गुनाह है फिर एक बुड्ढे कामुक के बारे में कहना तो बहुत बड़ा गुनाह होगा।

जैसे-तैसे सवेरा हुआ। दिन के दस बजे। डाईरेक्टर महोदय दफ्तर पहुँचे। घंटी बजाकर चपरासी को बुलाया, 'रंजना को……।' उनकी

आज्ञा थी।

चपरासी 'जी साहब' कह कर मुड़ा ही था कि रंजना दरवाज़ा खोलती हुई अन्दर आ खड़ी हुई, 'गुड मार्निंग सर।' वह बोली।

'गुड मार्निंग।' डाईरेक्टर का सिर झुका हुआ था। वह क्रोध प्रदर्शित कर रहे थे।

चपरासी जा चुका था। रंजना सामने वाली कुरसी पर आ बैठी, 'कल के लिये क्षमा चाहूँगी।' उसने अपने दाहिने हाथ को धीरे-से उठा कर मेज़ पर रख दिया।

'यह क्या ? कोई एक्सीडेन्ट हो गया ?' डाईरेक्टर महोदय का क्रोध काफूर हो गया। उन्होंने हाथ बढ़ाकर रंजना की हथेली को पकड़ लिया। अवसर से लाभ क्यों न उठाया जाय ?

'प्लीज़……दर्द होता है।' उसने धीरे-से हथेली खींच ली, 'कल जान बच गई सर, यही समझ लीजिये। बड़ा हारीबिल एक्सीडेन्ट था। मेरा स्कूटर एक सामने से आते हुए स्कूटर से भिड़ गया।'

'उफ्। ट्र लकी यू आर। और भी कहीं चोट आई ?'

'चोट नहीं आई; लेकिन जर्क ऐसा लगा है कि बदन का एक-एक हिस्सा बेजान हो गया है। मैं आने की स्थिति में नहीं थी लेकिन आप की खातिर……।' वह कहती-कहती रुक गई।

डाईरेक्टर महोदय कुछ कहें, इसके पूर्व रंजना पुन: बोल उठी, 'मैं एक सप्ताह की छुट्टी लेना चाहूँगी सर।'

'हाँ ले लो। लेकिन,' वह सोचते हुये बोले, 'छुट्टी क्यों खराब करोगी ? सवेरे घंटे-दो-घंटे आकर चली जाया करो।' डाईरेक्टर महोदय को एक सप्ताह का अलगाव सहन नहीं था। और कुछ नहीं तो सवेरे दो-चार मीठी-मीठी बातें तो हो सकती थीं।

'थैंक्यू सर।' वह खड़ी हुई, 'मैं घर जा रही हूँ।' वह डाईरेक्टर महोदय को कुछ कहने का अवसर दिये बिना शीघ्रता से मुड़कर बाहर निकल गई।

न कोई एक्सीडेन्ट हुआ था और न रंजना को किसी प्रकार की चोट आई थी। उसने झूठी पट्टी बाँधकर डाईरेक्टर साहब को बुद्धू बनाया था और छुट्टी एक हफ्ते की मारी, सो अलग थी। इश्कबाजी में यही होता है।

२३

कनॉट सरकस पर धीरज की रंजना से भेंट होने लगी; किन्तु उसका रूप अभी एक प्रकार से औपचारिक ही था और ऐसा इसलिये था कि रंजना अपनी ओर से डोर कसे हुये थी। वह धीरज की कोशिश को अधिक बढ़ाना चाहती थी। उसे पूर्णतः अपने हाथ की कठपुतली बनाना चाहती थी। तभी तो सुखद और आनन्ददायक भविष्य बन सकता था; अन्यथा फूल पर मंडराता हुआ भौंरा रस चूसने के उपरान्त फिर कहाँ हाथ लगता है ? रंजना ने पुरुषों की मनःस्थिति को, उनकी स्वार्थभरी भावनाओं एवं आकाँक्षाओं को तथा स्त्रियों के संग खिलवाड़ करने की मनोवृत्ति को भली भाँति समझ रखा था। उसे अपनी इस छोटी आयु में पुरुष जगत का अच्छा तजुर्बा हो गया था। कारण, वह जो कुछ देखती पढ़ती थी वह उस पर मनन भी करती थी और इस बीसवीं शताब्दी में देखने-पढ़ने के लिये इतना पर्याप्त है कि जानकार के लिये जानने-समझने में अधिक समय नहीं लग सकता।

यह देखा गया है कि जो वस्तु जितनी दूर हटती है उसे प्राप्त करने की लालसा उतनी ही बलवती होती जाती है। ठीक यही दशा धीरज की थी। वह दिन-प्रतिदिन अधिक वेग से रंजना की ओर बढ़ता जा रहा था; किन्तु विवशता के आगे कौन-सा चारा था। वह अपनी ओर से तो हर तरह की कोशिशें करता पर रंजना उन्हें सफल होने देती तब न। उसकी ओर से अभी तक नहीं के बराबर ही प्रोत्साहन मिल सका था।

आज संध्या को भेंट होने पर धीरज ने प्रस्ताव रखा, 'क्यों न शहर से बाहर निकल कर प्राकृतिक आनन्द लिया जाय ? चाँदनी रात भी है। आँखों को बड़ी भली लगेगी। क्या विचार है सविताजी ?'

इसके पूर्व की सविता कुछ कहे रंजना बोल उठी 'बेकार है। यहीं घूमिये। कहाँ आना-जाना होगा ?' रंजना की अनिच्छा दिखावटी थी।

'तुझे तो नाही करने की बीमारी हो गई है। जो कुछ भी कहा जायेगा उसका प्रतिवाद करना तेरे लिये आवश्यक है।' वह धीरज की ओर देखकर बोली, 'चलिये। इसकी यह आदत पुरानी है। किधर चलने का विचार है ?'

'शाहदरे की ओर।'

'नहीं। उस सड़क पर ट्रैफिक अधिक है। कुतुबमीनार की ओर क्यों न चलें ?'

'उधर ही चलेंगे।'

'आपकी कार·······।'

'ओडियन पर·······।'

रंजना को कनखियों से देखकर सविता ओठों में मुसकराई और उसका हाथ पकड़कर खींचती हुई चल दी।

सविता ने धक्का देकर रंजना को कार के अन्दर किया और स्वयं भी बैठ गई। धीरज ने गाड़ी स्टार्ट की और मोड़ता हुआ कुतुबमीनार वाली सड़क पर बढ़ चला। रंजना बीच में थी और धीरज उससे सटा हुआ बैठा था। सुगंधित तेल और सेन्ट की महक से उसकी नसों में दौड़ता हुआ खून कुछ अधिक तेजी से दौड़ने लगा था।

धीरज की गाड़ी उड़ती जा रही थी और शीघ्र ही कुतुबमीनार के आगे निकल गई। चाँद सामने चमक रहा था। हवा अच्छी थी। वातावरण शान्त था। दूर तक चारों ओर मैदान के अतिरिक्त और कुछ दिखलाई नहीं पड़ रहा था, 'बस रोकिये।' रंजना ने कहा।

धीरज ने मोटर सड़क के किनारे लगाते हुये रोक दिया। मोटर का रुकना था कि सविता सट से उतरी और 'आओ पकड़ो तो जानें', रंजना

से कहती हुई भाग खड़ी हुई। उसने दोनों को अवसर दिया था।

धीरज ने अवसर से लाभ उठाया। उसने रंजना का हाथ पकड़ लिया, 'अभी मेरी आरज़ू में कुछ कमी है रंजना जी ?' उसकी आवाज जैसे फँस-फँस कर निकल रही हो।

रंजना ने हाथ नहीं खींचा; किन्तु उसने कहा उसी तेवर के साथ, 'इट्स् बैड धीरज बाबू। हाथ छोड़िये।'

'हाथ छोड़ दूँगा लेकिन पहले अपने सवाल का जवाब तो ले लूँ। अगर घाव पर नमक छिड़कना अनिवार्य है तो उसकी भी एक सीमा होनी चाहिये न ?'

'हाथ तो छोड़िये। दिल्ली वालों की तरह आप भी बातें बनाने में पूरे उस्ताद हो गये हैं।' उसने हाथ खींच लिया और खिसकती हुई मोटर से बाहर हो गई।

धीरज भी शीघ्रता से दरवाज़ा खोलकर उसके सामने आ खड़ा हुआ, 'क्या मैं दिल्ली छोड़कर चला जाऊँ ?'

'अगर जा सकते हैं तो ज़रूर चले जाइये।' वह बगल से होती हुई भाग खड़ी हुई।

धीरज का रोम-रोम झूम उठा। उसने भी पैर बढ़ाये और रंजना के पार्श्व में आकर बोला, 'क्या इतनी घृणा इस सूरत से है ?'

'घृणा वाली सूरत से घृणा नहीं तो प्यार होगा ?' उसने गर्दन मोड़कर धीरज की ओर देखा 'सविता सामने देख रही है। बिल्कुल बुद्धू।'

धीरज रुक गया। अङ्ग-अङ्ग नाच उठे थे।

सविता आगे सड़क पर खड़ी थी। रंजना के समीप आने पर पूछा, 'ठीक रहा ?'

'बहुत ठीक।'

'कुछ हुआ ?'

'वही जो होता है। भाई गिड़गिड़ा रहे थे। प्यार पाने की विनती कर रहे थे। न मिलने पर दिल्ली छोड़ देने का निश्चय किया है। शायद मेरे वियोग में संन्यासी हो जायेंगे।'

'ओहो। मजनू तो नहीं बन जायेंगे ? इतनी जल्दी यह हालत ?'

'देख ले मेरी कशिश। मान लिया मेरा नक्शा ?'

'चल। अंधे के हाथ बटेर लगी बन गये तीरंदाज। भाग्य की बात है। चिड़ी का गुलाम मिल गया वरना·······।'

'चुप रह। वह·······।' रंजना का संकेत धीरज के लिये था।

धीरज समीप आया और बोला, 'आपने तो सविता जी बिल्कुल रेस लगा दी। सम्भवतः आपको स्थान बहुत पसन्द आया।'

'बहुत। मैं समझती हूँ अगर महीने पर आने-जाने को मिले तो स्वास्थ्य में काफी परिवर्तन आ सकता है।'

'और अगर' रंजना कह उठी, 'पैदल आने-जाने को मिले तो और अधिक।' वह हँसने लगी।

धीरज ने बात के सिलसिले को बदला, 'आइये ! चलिये उस सामने वाली चट्टान पर बैठा जाय।'

तीनों उस पर आकर बैठ गये और फिर सिनेमा जगत पर वार्ता आरम्भ हो गई। युवतियों के लिये यह विषय विशेष रूप से रुचिकर होता है। अभिनय और अभिनेता के प्रसंग में जहाँ संगति का उल्लेख आया वहीं रंजना के मुँह से निकल पड़ा। 'सविता, आज तू भी कोई गीत सुनादे। बहुत दिन हुये सुने।' उसने धीरज की ओर देखा, 'बड़ा सुरीला गला है इसका। आप भाव विभोर हो उठेंगे।'

'अपनी बात मेरी ओर से क्यों कह रही है ? पंडित जी मैं सच कहती हूँ, गजल गाने में रंजना का जवाब मिलना मुश्किल है। सुनेंगे तो सुनते ही रह जायेंगे।' सविता ने कहा।

'चलिये मेरी तो पाँचों उँगुलियाँ,' धीरज बोला, 'घी में हैं। भगवान सब को भाग्य ऐसा ही दे। अब पहले आप सुनाइये फिर रंजना जी। एक हिन्दी और एक उर्दू। बड़े उपयुक्त स्थान पर यह रहस्य प्रकट हुआ

है। अन्यथा सुनने का सौभाग्य कहाँ प्राप्त होता ? सुनाइये सविता जी।

'पहले आप रंजना से सुनिये।'

'नहीं। पहले हिन्दी उसके बाद उर्दू। उर्दू के बाद हिन्दी कवितायें कम जम पाती हैं। मेरा ऐसा अनुभव है।'

'ऐसी बात नहीं है।' रंजना बोली, 'सविता के पास जैसी सुरीली आवाज है उसमें कोई भी चीज जम सकती है। फिर भी फर्स्ट सविता आफ्टर वर्ड्स् माईसेल्फ। सुना सविता।'

सविता तैयार हो गई; परन्तु कोई गीत न सुना कर दो एक मुक्तक सुनाने को कहा। वह गीत सुनाने के मूड में नहीं थी। 'चल वही सुना, रंजना बोली, 'पहले तेरा मूड तो बने।'

सविता ने पहला मुक्तक सुनाया—

मैं जगत का दर्द लेकर जी रही हूँ,
सारे सुख-दुःख एक धागे सी रही हूँ;
जिन्दगी छलिया न अब कुछ कर सकेगी—
मैं स्वयम्भू बन हलाहल पी रही हूँ।

'वाह सविता जी! बहुत सुन्दर!' धीरज कह उठा, "मैं स्वयम्भू बन हलाहल पी रही हूँ' बहुत सुन्दर। अन्तिम पंक्ति की जितनी प्रशंसा की जाय कम है।'

सविता ने दूसरा सुनाया—

खुदी दूर हो तो खुदा हाथ आये,
भरम दूर हो तो धरम हाथ आये;
यही सार सब दर्शनों का कहा है—
ग़रज दूर हो फ़रज हाथ आये।

'वाह! वाह!! किस खजाने से यह सब निकाल रही हैं सविता जी?'

'इस की स्वयं की लिखी हुई हैं। आपने इसे समझा क्या है?' रंजना ने बताया।

'तुझ से कम।' सविता ने उसके गाल को नोच लिया। रंजना ने

'सी' किया और बदले में उसने भी सविता के गाल को नोच लिया।

'हट शैतान कहीं की।' फिर वह धीरज से बोली 'तीसरी रूबाई सुनिये पंडित जी—'

प्यार की दुनिया सजा ली हो गया,
मौत से बाज़ी लगा ली हो गया;
अब न मुझ को फिक्र है दैरोहरम की—
आपने नज़रें मिला लीं हो गया।

रंजना कह उठी 'बैड लक धीरज बाबू। होपलेस्ली बैड। सविता के लिये तो नज़रें काफी हैं; लेकिन आपके लिये......।'

धीरज के स्थान पर सविता ने जवाब दिया, 'आपके लिये आप।' वह हंस पड़ी। रंजना और धीरज भी हंसने लगे।

रंजना ने आग्रह किया, 'एक और सविता।'

'नहीं। अब तू सुना।'

'केवल एक।' धीरज ने रंजना के कथन का समर्थन किया।

सविता मिनट-दो-मिनट सोचती रही, फिर बोली, 'खैर, एक रूबाई प्यार में मरने-जीने वालों पर सुन लीजिये—'

प्यार में जीना न आया, प्यार में मरना न आया,
दर्द में रोना न आया, हर घड़ी हंसना न आया;
तेरी उलफ़त में मैं यों पागल हुआ हूँ—
रात में सोना न आया दिन में अब जगना न आया।

सब हंसने लगे। 'आपने वास्तविकता कह दी। इधर वही हालत है।' धीरज ने रंजना को विशेष प्रकार से देखा।

'तब तो मेरा अनुमान सत्य निकला। रंजना तू भी इससे सहमत है न?'

'सहमत क्यों न हूँगी? अनुभव पर आधारित जो ठहरा।' रंजना का उत्तर सविता के प्रश्न के अनुरूप था।

दोनों सहेलियाँ एक-दूसरे को देखकर हंस पड़ीं।

धीरज ने अपनी बात चलाई, 'अब रंजना जी गजल सुनायेंगी ।'

'जी नहीं ।' रंजना अचानक खड़ी हो गई, 'अपनी दिल्लगी नहीं करानी है । अब मेरा जम नहीं सकता ।'

'तो आप खड़ी क्यों हो गई ?'

'अब चलिये ।'

'चलते हैं ।' सविता को कुछ बुरा लगा था 'बैठ तो सही ।'

'नहीं । अब चल । कल फिर आयेंगे ।' उसने सिर हिलाकर संकेत किया 'घड़ी तो देख ।'

सविता समझ गई कि रंजना कल पुनः आना चाहती है । उसने बात पलटी, 'हसीनों के नखरे बर्दाश्त करने ही पड़ेंगे पंडितजी । उठिये । चलिये । कल आकर सुनेंगे ।' सविता भी खड़ी हो गई ।

धीरज को उठना पड़ा ।

२४

धीरज रात में देर तक सोचता रहा— कल के विषय में सोचता रहा । यद्यपि अभी उँगुली की ऊपर वाली पोर ही पकड़ में आ सकी थी पर यह विश्वास होने लगा था कि अगर परिस्थिति इसी प्रकार अनुकूल बनी रही तो एक दिन उँगुली के साथ-साथ कलाई भी पकड़ में आ जायेगी । वह प्रसन्न था । रंजना शीघ्र से शीघ्र प्राप्त हो सके, यही चिन्ता शेष थी ।

जैसे-तैसे बड़ी व्यग्रता के उपरान्त दूसरे दिन वाली संध्या आई । धीरज कनॉट सरकस पहुँचा । जो स्थान निश्चित हुआ था वहीं गाड़ी लाकर खड़ी की । घड़ी में समय देखा । वह बीस मिनट पहले आ गया था । वहीं गाड़ी छोड़कर टहलता हुआ आगे निकल गया समय व्यतीत करने के अभिप्राय से । जब वह चक्कर लगा कर लौटा तब भी पाँच

मिनट शेष थे । वह मोटर में जाकर बैठ गया । समय पूरा हो गया । धीरे-धीरे लगभग आध घण्टे से अधिक भी हो गये । धीरज की अकुलाहट बढ़ी । वह बाहर निकल कर खड़ा हो गया और देर होने के कारणों का अनुमान लगाने लगा । तब तक बाँयी ओर की सड़क से जोड़ी आती दिखलाई पड़ी । बिजली की भाँति सारे शरीर में खुशी की लहर दौड़ गई । कैसा आनन्द मिल गया इसे बताना कठिन है ।

दोनों समीप आईं । नमस्ते हुआ । धीरज के नेत्र अब भी रंजना को उसी प्रकार निहार रहे थे । आज उसकी सुन्दरता आँखों को चकाचौंध कर रही थी । 'लगभग घंटे भर से प्रतीक्षा कर रहा हूँ ।' उसने कहा ।

'अजी श्रीमान, कभी-कभी पूरा जीवन समाप्त हो जाता है । घंटे दो घंटे और वर्ष दो वर्ष की क्या बात ? आईये चलिये ।' सविता मुसकराई ।

धीरज अब भी रंजना को देख रहा था; किन्तु रंजना धीरज को नहीं देख रही थी । धीरज ने उसाँस खींची, 'चलिये साहब, अब तो उसके लिये भी कमर कस लिया है ।' उसने दरवाजा खोला ।

दोनों बैठ गईं । धीरज भी बैठ गया और गाड़ी स्टार्ट कर दी । 'देर कैसे हो गई आप लोगों को ?'

'रंजना से पूछिये । बड़ी मुश्किलों के बाद तो आई है । आज मैडम का घर से निकलने का मूड नहीं बन रहा था ।'

धीरज के अन्तर में जैसे कोई चीज चुभ गई हो । क्या रंजना को उससे लगाव नहीं है—यह प्रश्न उसके मस्तिष्क में कौंध गया । क्षण भर पूर्व की प्रसन्नता अप्रसन्नता में परिवर्तित हो गई । उसके मुँह से निकला, 'कैसे बनता सविता जी ? यही तो मेरा दुर्भाग्य है । आज तक मैं किसी को पसन्द आया ही नहीं ।' धीरज के कहने में पीड़ा थी ।

किस प्रकार कौन-सी बात कहनी होगी इस पर दोनों सहेलियाँ पहले से विचार कर लिया करती थीं । सविता ने रंजना की मूड वाली बात इसी विशेष उद्देश्य के विचार से की थी । उसने रंजना की जाँघ में धीरे

से खोदा फिर बोली, 'पर मुझे तो आप पसन्द आये। रही रंजना की लाईकिंग की बात उसके बारे में अवश्य कुछ नहीं कह सकती।'

'तेरे कान उखाड़ लूंगी शैतान। धीरज बाबू से लड़ाई करा देगी क्या? झूठी कहीं की।'

'तो फिर बता देर क्यों हुई?'

'तेरी वजह से। तेरे चाहने वालों से तुझे फुर्सत मिले तब तो। अगर उसने बैठकर घण्टे भर बोर न किया होता तो देर क्यों होती? उसे भी बातें करने की बीमारी है और तुझे भी। अजीब लड़की है।'

धीरज की प्रसन्नता वापस आ गई। उत्साह बढ़ गया। वह कुछ खिसक कर रंजना से सट गया और सविता की आँखें बचाकर उसकी हथेली को दबा दिया। रंजना ने कनखियों से आँखें तरेरीं और फिर सामने देखने लगी।

सविता जानकर भी अनजान बनी रही। उसने बातों का क्रम बनाये रखा, 'क्यों नहीं मुझे तो बीमारी है ही। पंडित जी आप निर्णय कीजिये। किस की बात झूठी लग रही है। पक्षपात न होने पाये इसका ध्यान रखियेगा।'

'तू अभी से गिल्टी कान्सस क्यों है?'

'इसलिये कि पंडितजी को तेरे से कुछ है।'

'क्या है?'

'मैं क्या जानू क्या है? तू स्वयं नहीं जानती?'

'ना।'

'तो पंडितजी से पूछ ले। उन्हें मालूम है।' वह खिलखिला उठी। रंजना ने उसकी नाक पकड़ कर हिलादी 'सिली।'

धीरज हंसने लगा।

गाड़ी कुतुबमीनार से मुड़ती हुई आगे बढ़ गई। कल वाला स्थान आ गया। धीरज ने गाड़ी रोक दी। सब उतर पड़े।

'तीनों उसी चट्टान पर आकर बैठ गये। बैठते ही धीरज ने कहा 'कल वाला वायदा रंजना जी भूली नहीं होंगी?'

'भूल भी गई होगी तो आज छुटकारा मिलना असम्भव है। चल सुना रंजना।'

रंजना ने कहा—'बिस्मिल की एक गजल सुनिये।'

दुनियाये वफा का हंगामा दौ दिन में वह कैसा भूल गये,
जिस दिल में तमन्ना बनकर रहे उस दिल की तमन्ना भूल गये।
हर एक को दुनियाँ में रह कर दिन रात ख्याले दुनियाँ था,
दुनियाँ की हक़ीक़त जिस पै खुली वह हासिले दुनियाँ भूल गये।
यह बेखुदिये उलफत का असर कुछ भी न रही अपनी ही खबर,
वह दिल की तमन्ना पूछते हैं हम अपनी तमन्ना भूल गये।
बुतखाना इधर मस्जिद भी उधर जाना था कहाँ पहुँचे हैं कहाँ,
मालूम यह ऐ दिल होता है हम इश्क में रस्ता भूल गये।

'वाह! वाह! खूब लिखा है।' धीरज सिर हिलाता हुआ कह उठा।

'अब मकता सुनिये?' रंजना बोली

बिस्मिल की नजर कातिल से मिली कातिल की नजर बिस्मिल से मिली,
खंजर वह चलाना भूल गये, हम अपना तड़पना भूल गये।

'बहुत ही सुन्दर।' धीरज के नेत्र रंजना के नेत्रों द्वारा हृदय तक पहुँचने का प्रयत्न करने लगे।

सविता क्यों चूकने लगी, 'क्या वास्तव में तड़पना भूल गये पंडित जी?'

धीरज झेंप गया; किन्तु तत्काल उसने सटीक उत्तर दिया, 'पहले खंजर चलाने वाले से तो पूछिये।'

तीनों हँस पड़े। धीरज ने एक और सुनाने को कहा। रंजना ने दूसरी गजल सुनाई—

न होती चाह तो क्यों आबरू बरबाद हम करते,
कहे में दिल अगर होता तो क्यों हम आरजू करते।
खुदा मिलता जो मिलने की खुदा से आरजू करते,
मगर तुम को न पाया उम्र गुजरी जुस्तजू करते।

बहुत थीं हसरतें दिल में बहुत अरमान बाकी थे,
अकेले में अगर मिलते तो कुछ हम गुफ्तगू करते।

रंजना गजल को बड़े उतार-चढ़ाव के साथ गा रही थी। सुरीले कण्ठ से निकली हुई आवाज वातावरण में गूंज उठी थी। वास्तव में उसके स्वर ने सम्मोहन डाल दिया था। धीरज कहीं का न रह गया था। रंजना उसके लिये स्वर्ग का फूल बन गई थी। उसे ऐसा भास होने लगा था कि रंजना अपने अन्तर की वास्तविकता इस गजल के द्वारा व्यक्त कर रही है। वह अत्यधिक आह्लादित था। अचानक उसका मन कह उठा 'रूनियाँ इसके पैरों की धूल भी नहीं है।'

तब तक रंजना बोली, 'मक़ता सुनिये—'

मुहब्बत तुम से जाहिर की खता यह सब हमारी है,
अगर हम चाहते तो तुम हमारी आरजू करते।

'वाह रंजना जी। आप तो मुर्दे में एक बार जान डाल देने की क्षमता रखती हैं।' धीरज के शब्द थे। 'एक और।'

'अमृत समाप्त हो जायेगा तो दुबारा कहाँ से लाईयेगा? रंजना कह-कर हंसने लगी। सविता और धीरज भी हंसने लगे। 'अब एक चीज कोई आप सुना डालिये।' रंजना का प्रस्ताव धीरज से था।

सविता ने समर्थन किया, 'यही मैं भी कहने वाली थी। जो घंटों धारा प्रवाह बोल सकता है उसे कविता पढ़ने में क्या परेशानी?'

'मैं और कविता—क्या बात कह दी आपने? अगर यह आती होती तो मेरे भी आरजू करने वाले न होते?' उसकी आँखें रंजना की आँखों से जा टकराईं।

'चलिये सुनाइये। भूमिका बाद में।' रंजना ने पुनः कहा।

'सच कहता हूँ रंजना जी, मैं इस क्षेत्र में बिल्कुल निल हूँ। मैं आपको सुनाऊँ क्या?'

'खैर आपको सुनाना है चाहे जो सुनाइये। यों छुटकारा मिलने से रहा।'

धीरज बड़े चक्कर में पड़ गया। उसे वास्तव में कुछ नहीं आता था; किन्तु रंजना की जबान खाली न जाय इसकी भी चिन्ता थी। लोक गीत उसे अवश्य मालूम थे लेकिन यहाँ सुनाना उपयुक्त नहीं था। वह सिर झुकाकर सोचने लगा। अचानक उसे किसी गजल की दो-एक पंक्तियाँ स्मरण हो आईं जिन्हें अपने गाँव में होली के अवसर पर किसी वेश्या से सुना था। संयोगवश पंक्तियाँ भी समयानुकूल थीं। वह बोला, 'आप लोगों की जबान रख रहा हूँ। बचपने में किसी से सुनी थी वही सुना रहा हूँ।'

'हाँ-हाँ, वही सुनाइये।' रंजना बोली

धीरज ने सुनाया—

न आई नींद, न आई कजा न आये आप
तड़प-तड़प के शबे इंतजार देख लिया।

'आगे सुनिये। जब वह आये तो किस तरह आये और कितने बेमौके आये।'

नया ग़म दे दिया दम भर को आकर,
इशारा कर दिया कुण्डी हिलाकर।

रंजना और सविता जोर से खिलखिला पड़ीं और काफी देर तक हँसती रही। 'कुण्डी हिलाकर' वाला प्रयोग उन्हें बहुत पसन्द आया था। हँसी का वातावरण समाप्त होने पर सविता बोली, 'मैं दस मिनट का पंडितजी आप से समय चाहूँगी। आपकी 'न आई नींद न आई कजा' पर एक रूबाई बनाने का मूड आ गया है। अभी आती हूँ। आप बुरा तो नहीं मानेंगे?' सविता खड़ी हो गई। वह दोनों को अवसर दे रही थी।

धीरज क्यों बुरा मानने लगा। उसे तो इसकी आवश्यकता थी ही। 'बुरा मानने की क्या बात है लेकिन आप जा कहाँ रही हैं?'

'सड़क तक। एकान्त चाहिये न।'

'बैठ सविता। बड़ी आई रूबाई बनाने वाली।' उसने हाथ पकड़कर बिठलाना चाहा।

सविता उछलकर अलग हो गई और 'अभी आती हूं' कहती हुई तेजी

से आगे बढ़ गई।

धीरज ने रंजना का हाथ पकड़ लिया, 'मैं आप से प्रेम करता हूँ रंजनाजी। आपको अपना जीवन साथी बनाना चाहता हूँ। आप के बिना मेरा जीवन बेकार है। अगर आपने निराश किया तो मैं कहीं का न रह जाऊंगा। मेरी दुनिया उजड़ जायेगी। मैं जहर.......।' धीरज कहता चला जा रहा था।

रंजना ने बीच में टोक दिया, 'अच्छा हाथ तो छोड़िये। बरसने वाले बादल गरजा नहीं करते।'

'ऐसा न कहिये रंजना जी। आप परख कर भी देख सकती हैं। इस हृदय में आपके अतिरिक्त दूसरे का चित्र नहीं मिलेगा।'

रंजना ने मुँह बनाया, 'जी हाँ। इसका मुझे अन्दाज है। किसी को बातें बनाना सीखनी हो तो आप पुरुषों से सीखे। हाथ छोड़िये। सविता को दिखलाई पड़ रहा होगा।'

'बहुत दूर है।' धीरज अब अपने को रोकने में असमर्थ था। उसने झटके से रंजना को खींच लिया और उसके अधरों को चूमने के लिए सिर झुकाया।

'नो।' रंजना उसके मुंह पर हाथ का ओट देती हुई अलग हो गई। 'इट्स बैड। डोन्ट बी सैक्सी।' वह खड़ी हो गई। 'आईये चलें। वक्त भी काफी हो गया है।' उसने आवाज़ दी, 'सविता। अरी सविता।'

धीरज चुपचाप खड़ा हो गया।

२५

बीमारी का बहाना जितने दिन चल सकता था उतने दिन चला। उसके बाद फिर डाईरेक्टर महोदय का प्रोग्राम बनने लगा। रंजना कहाँ तक टालमटोल करती? इसकी भी तो एक सीमा थी। अन्त में सीमा

का भी उल्लंघन हो गया। रंजना के लिए बड़ी परेशानी आ गई। उसने एक रात सविता से चर्चा चलाई—'उसने तो नाकों दम कर रखा है सविता! मैं नहीं समझ पा रही हूँ अब रास्ता कौन-सा निकाला जाय ?'

'किसकी बात कह रही है ?'

'उसी ओल्ड रास्कल की।'

सविता हंसने लगी, 'पहले तो बड़ी शान बघारती थी। अब भाव समझ में आया? बड़ी अनुभवी बनती थी न? पुरुषों से पार पाना बड़ा कठिन है। इन्हें थोड़ी लिफ्ट मिली नहीं कि चींटे की भांति चिपट गये।'

'वह क्या चिपटता सिर्फ नौकरी के कारण यह उलझन है वरना जूती साफ करने के लायक तो है नहीं।'

'इसे मैं भी समझती हूँ और वह भी समझता है। तुम्हें नौकरी में रखने का मतलब ही यही था। आजकल लड़कियों को नौकरियाँ इसी कन्डीशन पर दी जाती हैं। इस समय पदाधिकारी वर्ग जीवन का सच्चा सुख लूट रहा है। उसके साधन.......।'

'मुझे लेक्चर' रंजना ने बीच में टोक दिया, 'चिल्लायेगी या कोई तत्व वाली बात बतायेगी। नौकरी छोड़ना भी तो ठीक नहीं है।'

'नहीं। कम से कम चार-छः महीने तो करना ही होगा।'

'चार-छः महीने क्यों ?'

'जब तक पंडित से तेरी मैरिज न हो जाय' वह हंसने लगी।

दोनों आमने-सामने अपने-अपने पलंग पर लेटी हुई बातें कर रहीं थीं। रंजना ने करवट बदल ली।

'यह क्या ?' सविता ने पूछा।

'पहले जी भर कर मेरी खिल्ली उड़ा ले फिर काम की बातें होंगी. तुझे तो हर समय हंसी ही सूझती है।'

सविता पुनः हंसने लगी, अरी पगली! हंसकर ही जिन्दगी काटी

जा सकती है रोकर नहीं। तुझे उस बुड्ढे के साथ जाने में क्या उलझन है ? तेरे पास तो इतने लटके हैं कि अभी वह वर्षों उल्लू बनता रहेगा ।'

'वह बड़ा सूअर है रंजना । उसके बारे में बड़ी बुरी-बुरी अफवाहें हैं । मुझे सब बाद में मालूम हुई वरना यह नौबत न आने पाती ।'

'नौबत न आने पाती तो नौकरी भी न रहने पाती । आज का जो वातावरण है उसे देखते हुए उसे सैंकड़ों लड़कियाँ मिल सकती हैं । लेडीज ने अपनी आजादी और अधिकारों के प्राप्त करने के लिए जो रास्ता अपनाया है वह बड़ा गलत और घातक है । न ये इधर की रह पावेंगी न उधर की और इसका नाजायज फायदा उठा रहा है वही पुरुष जिससे वे मुक्ति चाहती हैं ।'

रंजना चुप रही।

सविता ने अपनी लेक्चर वाजी वाली त्रुटि पुनः अनुभव की और मन ही मन झेंपती हुई बोली, 'कल उसके साथ शाम का प्रोग्राम बना ले । अभी तो यों भी दो महीने आसानी से कट सकते हैं । आज मैं पंडित से कोई बहाना बना लूंगी ।'

'और मान ले अगर कोई उलटी-सीधी हरकत करने लगा तो ?'

'असम्भव है । यह उसका पहला अवसर होगा ?'

'लेकिन उसमें जो जल्दबाजी है और उसके बारे में जिस तरह की अफवाहें सुनने में आई हैं उनके आधार पर तेरा अनुमान गलत हो सकता है ।'

'अच्छा ऐसा ही मान ले । अगर इस तरह की कोई हरकत करता भी है तो क्या तू उसे मजा चखाने में किसी प्रकार कमज़ोर है ?' सविता तनिक रुकी और अपने अधरों पर मुसकान बिखेरती हुई बोली, 'अगर कोई हरकत करता भी तो इसमें तेरी हानि क्या ?'

'कुछ नहीं । तेरी तरह मैं भी अपनी ज़िन्दगी को पहेली बना लूंगी ।'

सविता हंसने लगी, 'आज पहली बार तूने मुझ से हार स्वीकार की है । कुछ कहने को नहीं मिला तो मेरी कमज़ोरी पर चोट करने लगी । कल शाम का प्रोग्राम बना लेना ।'

रंजना को पछतावा हुआ । वह उठकर सविता से जा चिपटी, 'मेरे मुँह से गलत बात निकल गई सविता । मेरे कहने का······।'

सविता ने उसके गाल को थपथपा दिया, 'पगली कहीं की । चल हट । कुछ मुझ से भी तो तुझे सीखना है । जा सो जा ।' उसने उठा दिया ।

रंजना उसके अधरों को चूमती हुई अपने पलंग पर आ लेटी ।

दूसरे दिन रंजना ने डाईरेक्टर महोदय के संग प्रोग्राम निश्चित कर लिया । शाम को उसके साथ मोटर पर बैठकर कुतुबमीनार की ओर चली गई । रात के नौ बजे तक लौटी । डाईरेक्टर महोदय उसे कनॉट सरकस पर छोड़ते हुए अपने घर चले गये ।

जब रंजना घर पहुँची तो सविता बैठी प्रतीक्षा कर रही थी, 'आ गई डार्लिङ्ग ?' वह बोल उठी ।

रंजना अपने हाथ में लटकते हुए बटुए को नचाती हुई उसके बगल में बैठ गई, 'आ गई मेरी जान । ऑल ओके ।'

'इसे तेरी सूरत बता रही है । कोई नई बात बतला ।'

'नई बात क्या होगी ? वही जो मर्दों की आदत होती है—पहले गिड़गिड़ाना, बाद में रौब जमाना; लेकिन जैसा मैंने तुझ से कहा था मोटर में बैठते ही बुड्ढे ने हाथ पकड़ लिया था । बड़ा खुर्रान्ट है ।'

'फिर ?'

'फिर क्या ? मैंने भी अपनी चतुराई दिखलाई और अन्त तक उसे दुबारा हाथ पकड़ने का अवसर नहीं दिया तो नहीं दिया । उसने अप्रत्यक्ष रूप से प्रयत्न किए थे लेकिन सब बेकार रहे ।'

'तब तो तूने कमाल कर दिया । मेरा अनुमान इम्ब्रेसिंग तक का था ।' वह मुसकराई ।

'चल। बड़ी आई इम्ब्रेसिंग का अनुमान लगाने वाली। धीरज पंडित तक को तो यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ उसकी क्या मजाल ?'

'मजाल की बात केवल पंडित के साथ है, उसके साथ नहीं। वहाँ तो विवशता है न। इम्ब्रेसिंग एण्ड किसिंग सभी सम्भव हैं।' वह हंसने लगी।

रंजना खड़ी हो गई, 'तू बैठी बक-बक करती रह मैं कपड़े बदलने चली।'

सविता ने उसका हाथ पकड़ लिया, 'बैठ ! बैठ ! अपने पंडित पौंगा की भी तो बातें सुनती जा। बड़ी मजेदार बातें हुई हैं।'

'चल लेट कर करेंगे।' उसने पानी पिलाने के लिए आया को आवाज दी।

आया पानी देकर दरवाज़े बन्द करने चली गई। दोनों अपने कमरे में आई। जब सिलिपिंग सूट पहन कर लेट गईं तो वार्ता आरम्भ हुई। रंजना बोली, 'मेरा ख्याल है सविता कि करपशन को बढ़ावा देने में आज के बुजुर्गों का हाथ ज्यादा है। जवानी की हवा आजकल उन्हें अधिक सता रही है।'

'बिल्कुल। इसे तो सभी स्वीकार करते हैं। युवकों में केवल छिछोरापन है बदमाशी नहीं। जब कि बुजुर्गों में बदमाशी अधिक है छिछोरापन कम। परिणाम यह होता है कि आई-गई सब युवकों के सिर मढ़ कर ये तुम्हारे ओल्ड रासकल्स् मौजें उड़ा रहे हैं और साथ ही अपने को दूध के धोये भी सिद्ध कर लेते हैं।'

'और सम्भवतः आगे तक करते रहेंगे ?'

'हाँ। जब तक देश में बेकारी और गरीबी की समस्यायें बनी रहेंगी। और तो और बीवियाँ तक अफसरों के पास भेजी जाने लगी हैं। चरित्र का यहाँ तक पतन हो गया है।'

'और शायद यह गरीबी पाँच-सात साल के पहले जाने से रही ?'

'और नहीं तो क्या ? देश की जो दशा है उससे यही अनुमान लग रहा है। स्वतन्त्रता मिल गई है पर देश की आर्थिक स्थिति में कोई सुधार होने के आसार नहीं दिखलाई पड़ रहे हैं। ऐसा भी है कि दस-पाँच वर्ष बाद स्थिति और बुरी हो जाय।'

'और बुरी हो जायेगी तो इन खूसटों की और बन आएगी।'

'मानी हुई बात है। उस समय नारी का व्यक्तित्व पूर्णतः समाप्त हो जाएगा। केवल उसके हाड़-माँस वाले शरीर का महत्व रह जाएगा जैसा आज विदेशों में है।' वह तनिक रुकी, 'खैर, छोड़ इन पचड़ों को। कौन-सी बात होने जा रही थी और कौन-सी होने लगी ? धीरज पंडित वाली बात तो अभी बताई ही नहीं।'

'मुझे उसका अन्दाज़ है। अपने मुँह को तुझे तकलीफ देने की आवश्यकता नहीं।'

'मैं कहती हूँ तुझे उसका रत्ती-भर अन्दाज नहीं है। वहाँ तक तेरी बुद्धि पहुँच ही नहीं सकती।'

'ठीक है। तू कहती रह मैं सो रही हूँ।' उसने करवट बदल ली।

सविता उठकर उसके पलंग पर आ लेटी, 'श्रीमान जी', सविता बोली, 'कह रहे थे कि क्या अकेले में कभी रंजना जी से भेंट करने का अवसर प्राप्त नहीं हो सकता ? मैंने उत्तर दिया—क्यों नहीं प्राप्त हो सकता। पर अकेले में आप बातें क्या करेंगे ? तब उसने जो कहा वह नोट करने लायक था। वह बोला—"सविता जी ! अकेले में बातें थोड़े होती हैं। केवल पास-पास बैठकर एक दूसरे की तस्वीर को आँखों में उतार लिया जाता है।"

मैंने पूछा, 'पर रंजना भी आपकी तस्वीर उतारेगी ऐसा विश्वास आपको है ?'

उसने उत्तर दिया, 'अपने को यार की यारी से मतलब है सविताजी यार से नहीं।'

रंजना मुसकराई, 'फिर तो वह बिल्कुल ही बुद्धू है। यह नहीं जानता कि रंजना को यार से मतलब है यारी से नहीं।'

दोनों हंसने लगीं।

२६

रूनियाँ प्रतीक्षा कर रही थी। धीरज अभी तक नहीं आया था। आजकल, आजकल करने में सप्ताह दो सप्ताह और बीत गये। धीरज का कोई पता नहीं था। रूनियाँ की रातों का अधिक समय चिन्ता में व्यतीत होने लगा। उसे धीरज के न आने की उतनी चिन्ता नहीं थी जितनी उसके न आने के कारणों पर। मस्तिष्क में नाना प्रकार के विचार उठते और घंटों उन पर तर्क-वितर्क चलते रहते और अन्त में वह आँसू बहाती हुई सो जाती। उसके हृदय की व्यथा उस समय अधिक बढ़ जाती जब नेत्रों के सामने गाँव वाले चित्र खिंच आते। चलती रील के समान एक-एक घटना सामने आती और ओझल होती चली जाती। एक वह समय था जब धीरज उससे बातें करने के लिये व्याकुल रहा करता था; उसे एक नजर देखने के लिये तड़पती मछली की भाँति छटपटाया करता था, परन्तु उसी धीरज में यह परिवर्तन क्यों और कैसे? उत्तर मिलता—परिस्थितियों में परिवर्तन और काम की अधिकाई। व्यस्तता बढ़ जाने पर जीवन का दृष्टिकोण बदल जाता है। जिन कार्यों को किसी समय प्रधानता दी जाती थी वे गौण हो जाते हैं और गौण प्रधान बन जाते हैं। धीरज की भी यही स्थिति हो गई है। वैसे उसके हृदय में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आया है।

दूसरे तर्क ने उसका खंडन किया, 'यह कोई दलील नहीं हुई। व्यस्तता बढ़ जाने से क्या पुत्र अपने पिता को अथवा पति अपनी पत्नी को भूल जायेगा?'

उत्तर—भूल तो नहीं जायेगा किन्तु जिस रूप में वह अपने लगाव

को पहले प्रदर्शित किया करता था वह रूप व्यस्तता बढ़ जाने पर आना असम्भव है।

प्रश्न—'तो इससे यह अर्थ निकला कि लगाव में क्षणिकता है। कार्यों का महत्व अधिक है। प्यार का कोई अस्तित्व नही।'

उत्तर—'अस्तित्व क्यों नहीं बशर्ते उसमें सत्यता हो। आत्मिक आकर्षण हो। वहाँ स्वार्थ के लिए तनिक भी गुंजाइश नहीं है।'

प्रश्न—'तो धीरज के प्रेम में आत्मिक आकर्षण नहीं है। उसका हृदय स्वार्थी है।'

उत्तर—'स्थिति को देखकर तो यही अनुमान लगाना होगा अन्यथा अब तक न आने का कोई कारण नहीं। दिल्लीं में ऐसा कौन-सा कार्य है जिसके लिये उसे इतने दिनों तक रुकना पड़ा। फिर उसका तो वह क्षेत्र भी नहीं है। उसे तो अधिक समय यहाँ लगाना चाहिये जिससे वह अगले चुनाव में पुनः सफलता पा सके।'

बुद्धि ने एक नया प्रश्न रखा—सम्भव है किसी और चक्कर में हो। दिल्ली में तितलियाँ बहुत हैं। उनमें नाज-नखरा भी है और शिक्षा भी है। उनका जादू किसी पर भी चल सकता है और विशेषकर धीरज पर तो बड़ी सरलता से चल सकता है। एक एम० पी० के लिये पढ़ी-लिखी पत्नी होना आवश्यक है। उसका बड़े-बड़े लोगों से मिलना होता है, आये दिन सभा-समाजों में सम्मिलित होना पड़ता है, मेज कुर्सी पर बैठ कर खाना होता है और, और तमाम ऐसी बातें होती हैं जिनके लिये रूनियाँ बिल्कुल अयोग्य है।

रूनियाँ की आँखो में आँसू भर आये और तत्क्षण कपोलों पर बहने लगे। उसे विश्वास हो गया कि धीरज किसी के जाल का शिकार हो गया है। चिन्तायुक्त मन सदैव बुरी भावनाओं की ओर दौड़ता है।

अचानक एक दिन धीरज आ गया। रूनियाँ सब कुछ भूल कर उससे लिपट गई और अनजाने में आँखों से आँसू गिराने लगी। धीरज को रूनियाँ के आँसू बनावटी प्रतीत हुए, 'तो इसमें रोने की क्या बात है?' उसके मुँह से निकला, 'काम से फुर्सत मिलेगी तभी तो आना

हो सकेगा। बैठो। तुम्हारे लिये ही आया हूँ वरना बिल्कुल फुर्सत नहीं थी।'

रूनियाँ आँखें पोंछती हुई अन्दर चली गई और जलपान आदि का प्रबन्ध करने लगी। धीरज का व्यवहार उसे खटका था।

जलपान के उपरान्त धीरज नहाने चला गया और फिर सो गया। रूनियाँ नाना प्रकार के विचारों में खोई भोजन पकाने लगी। उसके मस्तिष्क में एक बात बार-बार टकरा रही थी—यदि उसका संदेह सत्य निकला तो ?

भोजन तैयार हो जाने पर उसने धीरज को जगाया। धीरज ने थाली खींचते हुए पूछा, 'और तुम ?'

'बाद में खा लेंगे। तुम खाओ।'

'क्यों ?'

'वैसे ही।'

धीरज समझ गया। उसने हाथ पकड़ कर उठाया, 'आओ बैठो। साथ-साथ खायेंगे।'

रूनियाँ बैठ गई और सिर झुकाकर खाना शुरू किया। जब से धीरज का स्नेह मिला था आज पहली बार उसे ऐसी व्यथा का अनुभव हुआ था। मन कचोट रहा था।

धीरज पर अभी तक दिल्ली का नशा था। अब वह आजमगढ़ वाली धरातल पर आया। उसने सोचा—उसके व्यवहारों में संतुलन होना चाहिये; अन्यथा बना बनाया काम बिगड़ सकता है। अतः अपने बांये हाथ से रूनियाँ की ठोढ़ी उठाते हुए उसने पूछा, 'बड़ा गुस्सा है आज ? मुझसे कौन-सा अपराध हो गया ?'

'अपराध तुम क्यों करने लगे ? अपराध तो मुझसे हो गया जो एक छोड़ दूसरे के गले आ लिपटी।' उसने पुनः अपना मुँह नीचे झुका लिया।

'और उस लिपटने ने मेरे में चार चाँद लगा दिये। मुझे एम० पी०

बना दिया; अन्यथा हल जोतते-जोतते जीवन समाप्त हो जाता।'

'ऐसी भाग्यवान होती तो वही क्यों छूटता ? आज यह दिन देखने को क्यों मिलते।'

'यह भी सही है। रेशमी साड़ी और मोटर चढ़ने को कहाँ नसीब होता ?' वह हँस पड़ा।

रूनियाँ थाली छोड़ कर खड़ी हो गई और जल्दी-जल्दी हाथ मुँह धोकर अपनी चारपाई पर पड़ रही।

धीरज ने भी हाथ मुँह धोये और हंसता हुआ उसकी चारपाई पर जा बैठा। रूनियाँ खड़ी हो गई। धीरज ने हाथ पकड़ लिया। 'हाथ छोड़ो। हमें तुम्हारी रेशमी साड़ी और मोटर नहीं चाहिये। हम आज अपने गाँव चले जायेंगे।'

धीरज उसी प्रकार मुसकरा कर बोला, 'गाँव चली जाओगी ?'

'बिल्कुल चला जाऊँगी।'

'पर गाँव वाले क्या कहेंगे इसे भी सोचा है ?'

'सब सोचा है। जैसे एक को छोड़ दिया, वैसे दूसरे को भी छोड़ दिया।'

'फिर तो जा सकती हो।'

'हाथ छोड़ो।'

'छुड़ा लो। अपने को पकड़ कर छोड़ना नहीं आता।'

'देखो, बात न बढ़ाओ। हम·······।'

रूनियाँ उसके आगे कुछ न कह सकी। धीरज ने उसे गोद में खींचकर भुजाओं में कस लिया था, 'बात ऐसी बात नहीं,' धीरज बोला, 'लेकिन खाना तुम्हारा भी खराब हुआ और मेरा भी। घन्टों लगकर पकाया था। वह मेहनत अलग बर्बाद हुई। भई, अगर किसी गलती से ठेस पहुँची है तो उसके लिये मैं माफी चाहता हूँ।'

रूनियाँ चुप रही।

धीरज पुनः बोला, 'रही दिल्ली से आने की बात उसके लिये मैंने

सोच लिया कि इस बार तुम्हें भी दिल्ली साथ लेते चलेंगे। तब न तो तुम्हें उलाहना देने का कोई अवसर मिल सकेगा और न मुझे। अब तो खुश हो?' उसने उसके कपोलों को चूम लिया।

स्त्रियों को न तो बिगड़ते देर लगती है और न प्रसन्न होते। जहां ये भयंकर से भयंकर षडयंत्रों को पचा सकती हैं वहीं ये साधारण से साधारण बातों को बताने में आनन्द का अनुभव करती हैं। यदि इनका हृदय कपट, ईर्ष्या और प्रपंचों से भरा हुआ है तो दूसरी ओर हरिश्चन्द्र और कर्ण के समान उदार भी है। इनके विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता और न इन्हें आज तक समझा ही जा सका है। दिल्ली ले जाने वाली बात ने रूनियाँ के कई भ्रमों का निवारण कर दिया। फिर भी उसने अपने भावों में परिवर्तन नहीं आने दिया, 'मुझे दिल्ली नहीं जाना है और न उलाहना ही देना है। भगवान जैसे-तैसे जीवन पार लगा ही देगा।'

'पर मेरा जीवन कैसे पार लगेगा?'

'जैसे इस समय दिल्ली में लग रहा है। बेकार की बातें गढ़ने में क्या लाभ? रूनियाँ इतनी बुद्धू नहीं है।'

'बुद्धू न होती तो धीरज के चंगुल में फंसती कैसे?' वह पुनः हंसने लगा और उसका हाथ पकड़कर उठाते हुये बोला, 'चलो जो कुछ बचा है उसे पेट में डालें। भूख के मारे आँते ऐंठी जा रही हैं।'

रूनियाँ चुपचाप चौके में आकर बैठ गई। धीरज ने बचा हुआ भोजन दूसरी थाली में निकाला और अपने हाथ से कौर उठाकर रूनियाँ के मुँह की ओर बढ़ाया। रूनियाँ ने मुँह फेर लिया, 'मुझे भूख नहीं है। तुम खाओ।'

'तो मुझे भी भूख नहीं है। आज भूख हड़ताल रहेगी। गाँधी बाबा तो महीनों अनशन किया करते थे। क्या मैं एक दिन भी नहीं कर सकता?'

रूनियाँ को हंसी आ गई। धीरज़ ने उसके मुँह में कौर डाल दिया।

रूनियाँ ने सिर झुका लिया। धीरज ने दूसरा कौर उठाया। 'आँते तुम्हारी ऐंठ रही हैं या हमारी। बड़े आये छोह करने वाले। खाओ।'

'ऐंठन की इतनी चिन्ता होती तो मुझे भी अपने हाथ से खिला न दिया होता? ठीक है। मैंने भी निश्चय कर लिया है कि आज अपने हाथ नहीं खाना है।'

'न खाओ। कल तो झक मार कर खाओगे ही?'

'क्या मालूम खायेंगे या पहले ही टें बोल जायेंगे।'

'चुप रहो। जो मुँह में आता है कह डालते हो।' उस ने अपने हाथ में कौर उठाकर धीरज के मुँह की ओर बढ़ा दिया।

धीरज खाता हुआ हंसने लगा।

रूनियाँ सिर झुकाकर कौर खिलाने लगी। दोस्ती हो गई। पुरुष ने स्त्री को चतुराई में पछाड़ दिया।

आजमगढ़ में एक सप्ताह समाप्त हो गया। धीरज को रंजना की याद परेशान करने लगी। वह दिल्ली लौटने का बहाना सोचने लगा। रूनियाँ को भी तो साथ नहीं ले जाना था। सोचते-विचारते एक सप्ताह हो गया फिर भी कोई उपाय समझ में नहीं आया। रंजना की चाहत बढ़ती जा रही थी।

बात तुक की न होते हुये भी अन्त में एक दिन धीरज को कहना पड़ा, 'मैं कल दिल्ली जाने की सोच रहा हूँ।'

'कल? तुम्हें दिल्ली के दौरे तो नहीं आने लगे हैं? हमें भी तो चलना है। एक दिन में पूरी गिरस्ती का इन्तजाम भला कैसे हो सकेगा?'

'मैं अब सोच रहा हूँ कि इस बार नहीं अगली बार तुम्हें ले चलूँगा। अभी तो फिर एक महीने के बाद आना है। पार्टी की एक विशेष बैठक होने वाली है।'

'तब जाने की क्या जरूरत है? बैठक के बाद चलेंगे। कुछ अपनी तन्दुरुस्ती का भी तो ध्यान रखा करो। ऐसा नाम और पैसा किस काम का? जी से जहान है। हम दिल्ली नहीं जाने देंगे?' रूनियाँ का निष्क-

पट हृदय धीरज की कपटता को कैसे भाँप सकता था !

धीरज ने समझाया, 'बात असल यह है रूनो कि जीवन में बार-बार अवसर नहीं आते हैं। एक मामला फंस रहा है। अगर बन गया तो दो-चार लाख के वारे-न्यारे हो जायेंगे। फिर अगले चुनाव में एम० पी० बने या न बने कोई चिन्ता नहीं। सारी जिन्दगी आराम से कट जायेगी।' धीरज ने सब कुछ झूठ कहा था।

'पर एम० पी० बनोगे क्यों नहीं ! वोट तो उन्हीं को देना है, जिन्होंने इस बार दिया था !'

'वोटरों का हाल बड़ा बेतुका है रूनो। इन्हें विष की छुरी समझो। मुँह से कहेंगे कुछ और करने के समय करेंगे कुछ। इनका कोई ठिकाना नहीं। इसलिये मुझे अगले चुनाव की सफलता पर सन्देह है।' धीरज ने ऐसी भूमिका बाँधी कि रूनियाँ कुछ कह न सकी।

धीरज ने काम बना लिया। फिर उसने रूनियाँ को बड़े-बड़े सब्ज बाग दिखलाये और दूसरे दिन अत्यधिक प्रेम प्रदर्शित करता हुआ दिल्ली को चल पड़ा।

२७

धीरज की गाड़ी लगभग तीन बजे दिन में दिल्ली पहुँची। घर पहुँचते और नहाते-धोते पाँच बज गये। नौकर से मोटर साफ करने को कहा और छः बजते-बजते वह कनॉट सरकस पर हाजिर हो गया। ओडियन के सामने वाले रेस्ट्राँ में जमकर नाश्ता किया और फिर बाहर निकलकर फिराकेयार में चक्कर काटने लगा। थोड़ी ही देर बाद रंजना से भेंट हो गई और सौभाग्य से अकेले हो गई। धीरज की प्रसन्नता का क्या कहना। जैसे स्वर्ग की कोई असाधारण वस्तु प्राप्त हो गई हो।

'आप कब आये ?' रंजना ने पूछा।

'अभी तीन बजे। आप अच्छी तरह हैं ?'

'हाँ। आप ?'

'आपके नामों के सहारे जी रहा हूँ। आजमगढ़ में एक-एक दिन काटना पहाड़ हो गया था।'

'तभी तो एक हफ्ते के वायदे पर पन्द्रह दिनों में आना हुआ है। झूठी चापलूसी में आप लोगों का कोई मुकाबिला नहीं।' उसने बड़े भावपूर्ण नेत्रों से देखकर सिर हिला दिया।

'क्या बतायें रंजनाजी ऐसा कोई साधन नहीं है; अन्यथा दिल निकालकर बाहर रख दिया होता। आपके…।'

'बस कीजिये' रंजना बीच में टोक बैठी, 'आज इतना ही रखिये। अभी और भी अवसर आयेंगे।' वह मुसकराने लगी, 'आईये चलिये कहीं बैठें।'

'सविताजी कहाँ हैं ?'

'अपने कालेज के किसी लेकचरर की बर्थ डे पार्टी में गई हुई हैं।'

'तो सम्भवतः रात के दस-ग्यारह बजे तक लौटेंगी।'

'ग्यारह तो नहीं लेकिन दस तो जरूर बज जायेंगे। चलिये यहाँ खड़े होकर…।'

'आईये कुतुबमीनार घूम आयें।'

रंजना ने बनावटी आश्चर्य दिखलाया, 'इस समय ?'

'क्यों ? हमेशा इसी समय तो जाते रहे हैं।'

'तो क्या हुआ ? सविता साथ रहती थी न। अकेले ठीक नहीं है। आप लोगों का कोई विश्वास नहीं।'

'आप की सौगन्ध खा लूँ तब तो विश्वास हो जायेगा। आप से कुछ बातें करनी हैं। बहुत दिनों से अकेले में मिलने को चाह रहा था।'

'ना बाबा, तब तो मैं जाने से रही। अनुभवी स्त्रियों का कहना है कि जब पुरुष कुछ सोचकर किसी लड़की से बात करना चाहता हो तो उससे कभी नहीं बात करना चाहिये।' वह मन्द-मन्द मुसकरा रही थी।

'आईये आईये । फोड़े पर इतना नमक न छिड़किये कि जान निकल जाय । मेरी जैसी स्थिति अगर आपकी होती तो पता चलता ।' धीरज ने कदम बढ़ाये ।

'ना, मैं नहीं जाऊँगी ।' रंजना उसके संग-संग चलती हुई बोली । रूपसियों के इन्हीं भावों पर यह संसार कितनी बार उजड़ चुका है । इनके शिकार स्वयं ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी हो चुके हैं ।

धीरज सिर झुकाये चुपचाप चलता रहा । रंजना भी मौन चलती रही । सड़क की पटरी जब समाप्त होने को आई तो रंजना चौंकती हुई बोली, 'इधर कहाँ तक चलना है ?'

'जहाँ तक आप ले चलें । अब मेरे कहने का क्या महत्त्व ?'

'अरे ! आप तो नाराज हो गये ?' वह हँसने लगी, 'लौटिये आप की गाड़ी ओडियन पर होगी ?'

'हाँ ।'

'चलिये कुतुबमीनार चलें ।'

धीरज का मन बल्लियों उछलने लगा । वह लम्बे-लम्बे डग रखता ओडियन की ओर बढ़ चला ।

मोटर सफदरजंग के मकबरे से होती हुई कुतुबमीनार की ओर बढ़ चली । दोनों मौन थे । धीरज बात करना चाहता था, पर कर नहीं पा रहा था । शुरू कैसे हो यही उलझन थी । मुँह तक शब्द आकर रुक जाते थे । वे उतने उपयुक्त नहीं प्रतीत होते थे जितना उसका मस्तिष्क चाहता था । अन्त में रंजना को ही छेड़ना पड़ा, 'भई मूक भाषा समझने के लिये मेरे पास बुद्धि नहीं है । अगर कुछ कहना हो तो मुँह से कहिये । नहीं तो बेकार पेट्रोल फुंकने से फायदा ?'

बेकार तो जिन्दगी भी फुंक रही है; रंजनाजी लेकिन क्या किया जाय ? मन के वशीभूत होकर नासमझ बनना पड़ रहा है ।'

'और कब तक बनना है ?'

'जीवन के अन्त तक ।'

'यह दृढ़ निश्चय है ?'

'अपना नहीं पर मन का अवश्य है ।'

'मन बीच में बहक भी तो सकता है ?'

'असम्भव है ।'

'क्यों ?'

'किसी के फन्दे में जकड़ गया है न । वहाँ से छूटेगा तभी तो ।'

रंजना के अधरों पर मुसकान की रेखा फैल गई, 'बातों में आप से पार पाना कठिन है ।'

'और बुद्धू बनाने में आप से ?' उसने रंजना का हाथ पकड़ लिया ।

'यह क्या ?'

'वही जिसकी चाहत में नींद हराम हो गई है ।'

'और हाथ पकड़ लेने से शायद नहीं होगी, क्यों ?'

'बिल्कुल नहीं । फिर तो बड़ी गहरी नींद आयेगी ।' वह रंजना के कोमल और चिकने हाथ को सहलाने लगा ।

'पर यह अनडिव एडवान्टेज है धीरज बाबू । आपने क्या वायदा किया था ?' रंजना ने अपने हाथ को खींचा नहीं ।

'वायदा निभाऊँगा तो अनुभवी स्त्रियों का अनुभव जो झूठा सिद्ध हो जायेगा । इसका भी तो ध्यान रखना है ।'

'रंजना ने अपना हाथ खींच लिया और बिल्कुल किनारे हट गई, 'अब नहीं होगा ।' वह मुसकराई ।

'धीरज ने झटके से ब्रेक लगा दिया । गाड़ी धचका देकर रुक गई । उसने रंजना का हाथ पकड़कर अपनी भुजाओं में खींच लेना चाहा ।

'दिमाग ठिकाने है या नहीं ?' रंजना बोली, 'पीछे किसी की गाड़ी आ रही है ।'

वास्तव में पीछे किसी गाड़ी की रोशनी चमक रही थी । धीरज को अलग हट जाना पड़ा । उसने गाड़ी स्टार्ट कर दी । मोटर कुतुबमीनार को पीछे छोड़ती हुई उसी स्थान पर जा पहुँची ।

'आईये आईये । फोड़े पर इतना नमक न छिड़किये कि जान निकल जाय । मेरी जैसी स्थिति अगर आपकी होती तो पता चलता ।' धीरज ने कदम बढ़ाये ।

'ना, मैं नहीं जाऊँगी ।' रंजना उसके संग-संग चलती हुई बोली । रूपसियों के इन्हीं भावों पर यह संसार कितनी बार उजड़ चुका है । इनके शिकार स्वयं ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी हो चुके हैं ।

धीरज सिर झुकाये चुपचाप चलता रहा । रंजना भी मौन चलती रही । सड़क की पटरी जब समाप्त होने को आई तो रंजना चौंकती हुई बोली, 'इधर कहाँ तक चलना है ?'

'जहाँ तक आप ले चलें । अब मेरे कहने का क्या महत्व ?'

'अरे ! आप तो नाराज हो गये ?' वह हँसने लगी, 'लौटिये आप की गाड़ी ओडियन पर होगी ?'

'हाँ ।'

'चलिये कुतुबमीनार चलें ।'

धीरज का मन बल्लियों उछलने लगा । वह लम्बे-लम्बे डग रखता ओडियन की ओर बढ़ चला ।

मोटर सफदरजंग के मकबरे से होती हुई कुतुबमीनार की ओर बढ़ चली । दोनों मौन थे । धीरज बात करना चाहता था, पर कर नहीं पा रहा था । शुरू कैसे हो यही उलझन थी । मुँह तक शब्द आकर रुक जाते थे । वे उतने उपयुक्त नहीं प्रतीत होते थे जितना उसका मस्तिष्क चाहता था । अन्त में रंजना को ही छेड़ना पड़ा, 'भई मूक भाषा समझने के लिये मेरे पास बुद्धि नहीं है । अगर कुछ कहना हो तो मुँह से कहिये । नहीं तो बेकार पेट्रोल फुंकने से फायदा ?'

बेकार तो जिन्दगी भी फुंक रही है; रंजनाजी लेकिन क्या किया जाय ? मन के वशीभूत होकर नासमझ बनना पड़ रहा है ।'

'और कब तक बनना है ?'

'जीवन के अन्त तक ।'

'यह दृढ़ निश्चय है ?'

'अपना नहीं पर मन का अवश्य है ।'

'मन बीच में बहक भी तो सकता है ?'

'असम्भव है ।'

'क्यों ?'

'किसी के फन्दे में जकड़ गया है न । वहाँ से छूटेगा तभी तो ।'

रंजना के अधरों पर मुसकान की रेखा फैल गई, 'बातों में आप से पार पाना कठिन है ।'

'और बुद्धू बनाने में आप से ?' उसने रंजना का हाथ पकड़ लिया ।

'यह क्या ?'

'वही जिसकी चाहत में नींद हराम हो गई है ।'

'और हाथ पकड़ लेने से शायद नहीं होगी, क्यों ?'

'बिल्कुल नहीं । फिर तो बड़ी गहरी नींद आयेगी ।' वह रंजना के कोमल और चिकने हाथ को सहलाने लगा ।

'पर यह अनडिव एडवान्टेज है धीरज बाबू । आपने क्या वायदा किया था ?' रंजना ने अपने हाथ को खींचा नहीं ।

'वायदा निभाऊँगा तो अनुभवी स्त्रियों का अनुभव जो झूठा सिद्ध हो जायेगा । इसका भी तो ध्यान रखना है ।'

'रंजना ने अपना हाथ खींच लिया और बिल्कुल किनारे हट गई, 'अब नहीं होगा ।' वह मुसकराई ।

'धीरज ने झटके से ब्रेक लगा दिया । गाड़ी धक्का देकर रुक गई । उसने रंजना का हाथ पकड़कर अपनी भुजाओं में खींच लेना चाहा ।

'दिमाग ठिकाने है या नहीं ?' रंजना बोली, 'पीछे किसी की गाड़ी आ रही है ।'

वास्तव में पीछे किसी गाड़ी की रोशनी चमक रही थी । धीरज को अलग हट जाना पड़ा । उसने गाड़ी स्टार्ट कर दी । मोटर कुतुबमीनार को पीछे छोड़ती हुई उसी स्थान पर जा पहुँची ।

'क्या चाँदनी रात नहीं है ?' कार रुकने पर रंजना बोली।

'है क्यों नहीं ? जब चाँद होगा तो चाँदनी क्यों नहीं होगी ?'

'कहाँ है चाँद ?'

'मेरे बगल में।' वह खिसक कर उससे सट गया।

'अलग हटिये वरना मैं नीचे उतर जाऊँगी।'

'उतर कर देखिये।' उसने पकड़ लिया।

'धीरज बाबू।' रंजना के शब्दों में कठोरता थी, 'आई डोन्ट लाइक दीज़ थिंग्स।'

'क्यों ?' धीरज कुछ सहम-सा गया।

'मैरिज के पहले यह सब नहीं होना चाहिये।'

'पर क्या मैरिज में अब भी कोई सन्देह है ?'

'बिल्कुल है। आपको मेरे विषय में पूरी जानकारी कहाँ है ?'

धीरज के उखड़े हुये मूड में कुछ कमी आई, 'मुझे आपको जानना है, न की आपके विषय में। हाँ, मेरे विषय में आपको किसी प्रकार की जानकारी करनी हो तो अवश्य कर लें। वैसे हम आपके प्रेम पाने योग्य...।'

'बिल्कुल नहीं थे। यही न ?' वह मुसकराती हुई दरवाजा खोल कर नीचे उत्तर गई।

धीरज भी उतरा, 'चलिये वहीं बैठें।'

'नहीं ! टहलेंगे।'

दोनों अंधेरी सड़क पर धीरे-धीरे चलने लगे। धीरज ने पूछा, 'तो उसकी तैयारी की जाय ?'

'किसकी ?'

'उसी की। जिसके पहले कुछ नहीं हुआ करता।'

रंजना मुसकराने लगी, 'लेकिन अभी इसकी जल्दी क्या है ?'

'नींद नहीं खराब होने पायेगी।'

'इसकी दवा दूसरी भी है। लौटते समय याद दिलाईयेगा। आपको नींद वाली टेबलेट खरीद दूँगी।'

धीरज ने पुनः उसका हाथ पकड़ लिया।

'आप अपनी हरकत से बाज नहीं आयेंगे ?'

'मुश्किल है।'

'ठीक है। आज तो चंगुल में हूँ। लेकिन भविष्य में मिस्टर को पछताने के...।'

'तब तो आज के अवसर का भरपूर लाभ उठा लेना चाहिये अन्यथा...।' कहता-कहता धीरज रुक गया और रंजना को बाहुपाशों में जकड़ लिया।

२८

धीरज पंडित का क्या कहना था ? बहार ही बहार थी। रंजना के आलिंगन में जो मादकता थी उसकी खुमारी अब भी बनी हुई थी। मन पुनः उस मदिरा को पान करने के लिए बेचैन होने लगा था जब कि मुश्किल से अभी अट्ठारह-बीस घंटे ही समाप्त हो पाए थे। जैसे-तैसे बड़ी व्यग्रता के उपरान्त शाम आई। वह कनॉट सरकस पहुँचा। दोनों से भेंट हुई। पिक्चर का प्रोग्राम बन गया। टिकट खरीद कर हाल में आए; लेकिन रंजना धीरज के बगल में न बैठ कर सविता के बगल में बैठ गई जब कि धीरज अपने ही बगल में चाहता था। पिक्चर शुरू होने में अभी देर थी इसलिए चाय मंगाई गई। संग-संग समोसे भी। इधर-उधर की बातें होने लगीं; किन्तु कल के विषय में सविता और धीरज के बीच कोई बातचीत नहीं हुई। जब सविता ने चर्चा नहीं चलाई तो धीरज क्यों चलाने लगा।

खेल समाप्त हुआ। थोड़ी देर तक इधर-उधर चहलकदमी हुई। फिर होटल में बैठ कर भोजन हुआ। तदुपरान्त कल पुनः मिलने को कह

कर एक दूसरे से विदाई ली गई ।

लगभग दो सप्ताह समाप्त होने को आये; किन्तु रंजना ने एक दिन भी एकान्त का अवसर नहीं दिया । धीरज नित्य प्रयत्न करके भी सफलता नहीं पा सका था । पर कारण क्या है वह समझ नहीं पा रहा था । रंजना के प्रेम पर सन्देह किया नहीं जा सकता था । वह तो विवाह के लिये तैयार बैठी थी । फिर......। वह कारणों का अनुमान लगाने में असमर्थ था ।

एक सप्ताह और बीता । हंसी-मजाक घूमना-फिरना सब चलता रहा; किन्तु धीरज के मन वाली बात अब तक नहीं हो सकी थी । धीरज का धैर्य प्राय: समाप्त हो चला था । उसने दूसरा रास्ता अपनाने को सोचा । एक दिन उसने रंजना से उसके घर का पता पूछा और चलने की इच्छा प्रकट की ।

'किसी दिन भी चल सकते हैं, रंजना ने उत्तर दिया, 'घर आपका है । वैसे आपको अभी तक इनह्वाईट न करने की एक वजह थी ।' रंजना कम चतुर न थी ।

'क्या ?'

'हमारी लोकालिटी अच्छी नहीं है । आपके जाने से मनचलों को अवसर मिल जायेगा । वे आपको भी बदनाम कर सकते हैं । वहाँ "अंगूर खट्टे हैं" वाली मेन्टालिटी काम करेगी न ।' वह मुसकराई ।

धीरज को चुप हो जाना पड़ा । रंजना का कथन अकाट्य था । वह मन ही मन झुंझला उठा ।

सात-आठ दिन और बीते । जो कुछ चल रहा था वैसे ही चलता रहा । धीरज की तड़पन बढ़ती गई । मन का वेग काबू के बाहर होने लगा । फलस्वरूप एक दिन उसने रात में दोनों का पीछा किया और घर का पता लगा लिया । दूसरे दिन दोपहर के सन्नाटे में वह रंजना के घर जा पहुँचा । उसे सविता की नौकरी की जानकारी थी; किन्तु रंजना की नहीं । मकान छोटा-सा था; किन्तु अच्छे ढंग से बना हुआ

था । बरामदे में चढ़कर उसने लगी हुई घंटी को दबाया ।

दरवाजा खुला, 'किसको चाहते हैं आप ?' आया ने पूछा ।

'रंजना जी हैं ?'

'जी हाँ ।'

'कहो, धीरज पंडित आये हुये हैं ।'

बगल में ड्राईंग-रूम का दरवाजा खोलकर आया ने धीरज पंडित को बैठने के लिये कहा और अन्दर चली गई ।

धीरज पंडित का नाम सुनकर रंजना चौंकी फिर मन ही मन मुसकराती हुई कपड़े बदलने लगी । अभी कुछ ही देर पहले वह दफ्तर से आई थी । आज शाम को उसे डाईरेक्टर महोदय के संग सैर-सपाटे को जाना था । रंजना ने कमरे में प्रवेश करते हुये कहा, 'नमस्ते ।'

'नमस्ते ।'

'आखिर तबियत नहीं ही मानी क्यों ?' रंजना सामने वाले सोफे पर बैठ गई ।

'कभी किसी की मानी है या मेरी ही मानेगी ? तुलसीदास तो बाढ़ की नदी पार गये थे हुजूर ।'

'आप लोगों में बड़ा उतावलापन है । आगे-पीछे कुछ भी नहीं सोचते ।'

'कैसे सोचें ? महीने भर हो गये । एक दिन भी अकेले में कुछ कहने का अवसर दिया है आपने ?'

उसने मुँह बनाया, 'आप को बदतमीजी करने के लिये क्यों ? मैं बाज आई । वह सब मुझे अच्छा नहीं लगता ।'

'वह तो मुझे मालूम है; लेकिन कुछ काम दूसरे के हेतु किया जाता है ।'

'करने वाले करते होंगे । अपने को परोपकार पर विश्वास नहीं । ताज्जुब है, आपने मकान का पता कैसे लगा लिया ।'

'ताज्जुब तो यह भी है कि आपने मुझे पसन्द कैसे कर लिया ?'

'अच्छा चुप रहिये । बेकार की बातों से मेरा दिमाग खराब न

करिये।' वह मुसकरा रही थी।

'जब तक फैसला न हो जायेगा तब तक बेकार की बात चलती ही रहेंगी। मकान देख लिया है। अब रोज़ धावे होंगे।'

'कल से मकान छोड़ दूँगी।'

'उसका भी पता लग जायेगा।' उसने रंजना की आँखों में आँखें डाल दीं, 'इधर मेरे पास तो आइये।'

रंजना ने गर्दन हिलाकर नाही कर दिया।

'सिर्फ दो सेकेन्ड के लिये।' धीरज के स्वर में विनती थी।

रंजना खड़ी हो गई, 'आइये, आपको अपना घर दिखला दें। वह दरवाज़े की ओर बढ़ गई।

धीरज को खड़ा होना पड़ा।

मकान के अन्य भाग को दिखलाने के उपरांत रंजना सोने वाले कमरे में आई। धीरज क्षण भर इधर-उधर देखता रहा, फिर उसने धीरे से रंजना का हाथ पकड़ लिया।

'यह क्या ?' रंजना ने केवल कहने के लिये आपत्ति की, 'आया खाना बना रही है।'

'बना रही होगी।' उसने अपनी भुजाओं में खींच लिया।

रंजना भी खो गई, किन्तु बहुत समय तक नहीं। वह अलग हुई, 'यू आर बीस्ट।' वह बाहर निकलने के लिये मुड़ी, 'ड्राइंग रूम में चलो।'

धीरज ने पुनः हाथ पकड़ लिया, 'नहीं। पहले तय कर लो।'

'क्या तय कर लें। हाथ छोड़ो।'

'अब कब मिलोगी ?'

'अजीब हाल है। रोज़ तो मिलते हैं।'

'वह मिलना न मिलने के समान है। सविता जो साथ रहती है।'

'वह तो रहेगी ही। अकेले आना मुश्किल है।'

'मुश्किल है ?'

'बिल्कुल।'

'तो मेरा भी हाथ छोड़ना मुश्किल है। अब मैं यहाँ से जाऊँगा नहीं।'

'अच्छा बाबा। जैसे आप कहते हैं वैसा ही होगा। अब तो हाथ छोड़ो। अपनी ताकत से तुम लोग हर जगह फायदा उठाते हो।'

धीरज ने हाथ छोड़ दिया और उसके संग-संग ड्राइंग-रूम में आकर बैठ गया। थोड़ी देर तक इधर-उधर की बातें होती रहीं; तदुपरान्त वह चलने के लिये उठ खड़ा हुआ। कल शाम को कुतुबमीनार की ओर जाने की तय हो गई। आज शाम को न मिलने का रंजना ने बहाना बता दिया।

× × ×

धीरज की शाम की डाक में एक पत्र रूनियाँ का भी था। उसने किसी से लिखवा कर भेजा था। रूनियाँ ने अब तक न आने का उलाहना दिया था, कुछ गाँव-घर का समाचार लिखा था और पत्र के अन्त में यह भी संकेत कर दिया था कि अगर उसका आना अनिश्चित हो तो वह स्वयं किसी को साथ लेकर आ सकती है। आज़मगढ़ में उसकी तबीयत बिल्कुल नहीं लगती है।

धीरज चिट्ठी को देखता रह गया। सोच रहा था क्या सोचा था और हो गया क्या ? रूनियाँ का दिल्ली में आकर रहना किसी भी दशा में ठीक नहीं था। रहस्य के खुल जाने का भय था। इसके अतिरिक्त अन्य बाधायें भी उपस्थित हो सकती थीं। उसके सामने विकट समस्या आ गई। निष्कर्ष निकालना कठिन हो गया।

घंटों सोचते रहने के उपरान्त धीरज ने हल निकाला। उसे स्वयं आजमगढ़ जाकर किसी बहाने पुनः रूनियाँ को रोकना होगा। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय न था। कल रात में रंजना से मिलने के उपरान्त उसने आजमगढ़ जाने का निश्चय किया।

दूसरे दिन संध्या को रंजना से कनॉट सरकस पर भेंट हुई, किन्तु अकेले नहीं। साथ में सविता भी थी। धीरज अन्दर ही अन्दर जल कर

खाक हो गया। उसका मुँह उतर आया और गुमसुम उन लोगों के साथ एक रेस्ट्रां में आकर बैठ गया। रंजना ने आँख बचाकर सविता को इशारा किया और फिर दोनों होठों में मुसकरा उठीं। दोनों धीरज के क्रोध को समझ रही थीं। रंजना ने धीरज से पूछा, 'आप के लिये कॉफी या चाय ?'

'कुछ नहीं।'

'क्यों ?'

'तबियत ठीक नहीं है।'

'लेकिन ये दोनों चीजें आपकी तबीयत के लिये फायदेमन्द साबित होंगी। चाय मगवाँऊ ?'

'धन्यवाद। आप से बताया नहीं कि बिल्कुल तबीयत नहीं है वरना इन्कार करने की क्या बात थी ?'

'सविता' रंजना अपनी हंसी दबा कर बोली, 'शायद तेरे कहने से मान जाँय। आज तो कुछ नाराज से दिख रहे हैं।'

'नाराज होने की बात ही है। तेरी जबान पर लगाम तो है नहीं। जो मुँह में आता है कह डालती है। कोई उल्टी-सीधी बात कह दी होगी।' सविता भी अपनी हंसी दबाये हुये थी। फिर उसने संकेत से बेयरा को बुलाया और तीन कप चाय और तीन प्लेट तले हुये काजू लाने को कहा।

'मैं नाराज नहीं हूँ सविता जी। आज कुछ इच्छा है ही नहीं।'

'खैर, एक कप चाय में क्या है ?' उसने रंजना की ओर देखकर कुछ संकेत किया और फिर बोली, 'मैं अभी दो मिनट में आई रंजना।' वह तेजी से बाहर निकल गई। ऐसा उसने जानबूझ कर किया था।

धीरज ने रंजना को घूरा, 'कल आपने क्या वायदा किया था ?'

'समझी।' रंजना अनभिज्ञ-सी बोली, 'तभी तबीयत खराब है। सूरत ऐसी हो रही है मानो कहीं से पिट कर चले आ रहे हैं। बड़ी···।'

'देखिये, मुझे हर समय हँसी अच्छी नहीं लगती। किसी की भावनाओं को हर समय नहीं कुचलना चाहिए। ऐसी गुदगुदी किस काम की कि जान निकलने की नौबत आ जाय ?'

'सही है। ऐसी नसीहत तो मैं भी आपको दिया करती हूँ; लेकिन दुःख है कि आप उस पर कभी भी ध्यान नहीं देते।'

बेयरा चाय और काजू दे गया।

'चाय पीजिये।' रंजना बोली, 'अब तो घर पर भी भेंट नहीं हो सकेगी। एक जगह नौकरी ठीक कर ली है।'

धीरज चुप रहा।

रंजना ने प्याला उसकी ओर खिसकाया, 'पीजिये। आज सविता ने घर पर आपकी दावत की है। मैं कैसे आती ? दिमाग तो आदमियों के पास होता ही नहीं।' पुरुषों को बेवकूफ बनाना स्त्रियों के बाँयें हाथ का खेल है।

धीरज के मूड में परिवर्तन आया। उसने मुँह से प्याला लगा लिया और चाय पीने लगा—'क्या सचमुच आपने नौकरी कर ली है ?' उसने पूछा।

'हाँ। परसों से जाना शुरू कर दूँगी।' नौकरी का भेद न खुल जाय इस कारण रंजना ने उसे आज इस रूप में कह दिया था।

तब तक सविता भी आ गई, 'वेरी नाइस,' वह कुरसी पर बैठती हुई कह उठी, 'वास्तव में पंडित जी की दृष्टि में मेरा महत्त्व अधिक है।'

तीनों हँसने लगे।

चाय समाप्ति पर सब बाहर निकले। कुछ समय तक टहलते रहे; तदुपरान्त रंजना के घर आकर धीरज ने भोजन किया। फिर घंटे-डेढ़ घंटे हास्य-विनोद होता रहा; तत्पश्चात धीरज ने विदाई ली। चलते समय उसने बताया कि वह एक सप्ताह के लिए आजमगढ़ जा रहा है। तब रंजना प्यार की झिड़की देती हुई बोली, 'जब देखो तब आजमगढ़। अजीब तमाशा है। इस बार एक हफ्ते से अधिक न होने पाये। समझ गये न आप ?'

'बिल्कुल समझ गया। आपके आदेशों का पालन होगा।' वह मुसकराता हुआ हाथ जोड़ कर मुड़ गया।

मुझको दुनियाँ में कोई प्यार से देखा न करे,
दास्ताँ मेरी सुने अपनी सुनाया न करे;
मैं हूँ दुनियाँ से अलग मेरा अन्दाज़ नया—
बातें जो चाहे करे पास बुलाया न करे।

धीरज के सारे प्रयास असफल रहे। रूनियाँ उसके भुलावे में न आ सकी। वह दिल्ली चलने के लिये कटिबद्ध थी। धीरज को विवश हो जाना पड़ा। कोई चारा नहीं था। उसे दिल्ली लेकर आना पड़ा। रूनियाँ दिल्ली आ गई।

दो-चार दिन हंसी-खुशी में बीते, पर धीरज अपनी इस बनावटी प्रसन्नता को कब तक बनाये रख सकता था। कब तक रूनियाँ को बहका सकता था? एक न एक दिन पर्दा फाश होने ही वाला था। जो रूप का सम्मोहन और खिंचाव रंजना में था वह अब रूनियाँ में कहाँ मिलने का? रंजना स्वर्ग की अप्सरा बन कर आ गई थी। उससे रूनियाँ की कोई तुलना नहीं। फिर भी अभी धीरज बड़ी सतर्कता बरतने की कोशिश करता जा रहा था।

अधिवेशन आरम्भ हो गया था, इस कारण धीरज अब संध्या समय घर न आकर कनॉट सरकस चला जाया करता था और वहीं किसी रेस्ट्राँ में बैठ कर रंजना की प्रतीक्षा किया करता था। इस प्रकार सवेरे दस बजे का निकला हुआ रात में दस बजे ही लौट पाता था। दो-चार दिनों तक रूनियाँ यह दृश्य देखती रही; किन्तु अन्त में जब सहन शक्ति के बाहर हो गया तो एक दिन पूछ बैठी, 'अब शायद रूनियाँ वह रूनियाँ नहीं रही जिसके लिये तुम पागल रहा करते थे?'

'क्यों?'

'कारण भी हमें बताना पड़ेगा?'

'समझा। रात में देर से आने की शिकायत है? भई, चुनाव समीप

आ रहा है, उसी चक्कर में उलझा रहता हूँ। बड़े तीन-तिकड़म करने पड़ते हैं।' धीरज ने चकमा पढ़ाया।

'अभी से ?'

'अब कुल दस-ग्यारह महीने तो हैं ही। दूसरी पार्टियों ने तो प्रचार तक आरम्भ कर दिया है।'

रूनियाँ ने बात को घटाया, 'तुम संझा को आकर भी जा सकते हो। हम जिस कारण से यहाँ आये थे वह तो बेकार रहा। कमरे में बैठे-बैठे तबीयत ऊबने लगती है।'

'इसे मैं भी अनुभव करता हूँ पर किया क्या जाय ? उधर ढीले पड़ने पर काम बिगड़ जायेगा। टिकट मिलने का प्रश्न है।'

'तुम जो कह रहे हो उसकी गम्भीरता को हम समझते हैं पर उन दिनों को भी तो याद करो जब तुम जेल से फरार होने पर भी मुझ से बराबर मिलने आया करते थे। उसकी गंभीरता इससे अधिक थी या कम ?'

'तब और अब में बड़ा अन्तर आ गया है रूनो। उस समय जवानी थी नई-नई उमंगे थीं। एक ही नशा था। सारी दुनिया......।'

'समझ गई। अब वह जवानी की उमंगें नहीं रहीं। यही न ?'

धीरज मुसकरा कर बोला, 'नहीं, उमंगें क्यों नहीं रहीं ? मेरे कहने का मतलब था कि समय के अनुसार वस्तुओं में परिवर्तन आया करता है। पुराने और नये का भेद आरम्भ हो जाता है। मेरा भाव समझ रही हो न ?' धीरज समझाना चाहता था कुछ और उसके मुंह से निकल रहा था कुछ।

'चलो आज यह भी जानकारी हुई कि तुम्हारे अन्दर भी दूसरे मर्दों की तरह सौदेबाजी की आदत है। नया और पुराना देखा करते हो।' रूनियाँ ने कहा था हँसी के भाव में, किन्तु हृदय के भीतर एक पीड़ा उठने लगी थी।

धीरज ने रूनियाँ की पीड़ा का अनुमान लगा लिया। उसने तत्काल

अपनी गलती को सुधारने का प्रयत्न किया, 'कहाँ की बात तुमने कहाँ फिट कर दी ? मैंने किस भाव से कहा था और तुमने उसका और मतलब लगा लिया। धीरज तुम्हारा है और सदैव तुम्हारा रहेगा।' वह खड़ा हो गया और रूनियाँ का हाथ पकड़ कर उठाता हुआ बोला, 'चलो, तुम्हें चाँदनी चौक घुमा लायें।'

'इतनी रात में ?'

'अभी दस तो बज रहे हैं।' वह रूनियाँ को साथ लेकर बाहर निकला। पुरुषों के हथकण्डे निराले हैं।

रूनियाँ के मस्तिष्क में किसी प्रकार का सन्देह न उत्पन्न हो इस कारण अब धीरज दूसरे-चौथे संध्या को घर आने लगा; किन्तु वह आना न आने के बराबर था। जल्दी-जल्दी स्नान और जलपान करता तथा पाँच-सात मिनट चिकनी चुपड़ी बातें करके पुनः निकल भागता। यदि कभी रूनियाँ कनॉट सरकस चलने को कहती तो काम का बहाना बता-कर वह उसे फुसला देता। रूनियाँ का निष्कपट हृदय विश्वास करने के लिये विवश हो जाता।

दिन बीतने लगे। धीरज की दिनचर्या जिस प्रकार चलती रही थी वैसे ही चलती रही। रूनियाँ के मस्तिष्क में अब कभी-कभी सन्देह भी उठने लगा था। धीरज की मनोवृत्ति, उसकी आदतें और स्वभाव के अन्तर ने उसे सन्देह करने के लिए मजबूर कर दिया था। परन्तु धीरज में उस परिवर्तन का कारण क्या हो सकता है—अभी तक उसकी समझ में नहीं आ रहा था। खैर, कारण जो भी हो—लेकिन इतना निश्चित हो चुका था कि धीरज के हृदय में रूनियाँ के लिए अब पहले वाला स्थान नहीं था।

दिन बीतते गये। रूनियाँ अपनी व्यथा में व्यथित होती रही पर ऊपर से उसने कोई अन्तर नहीं आने दिया। उसे भी अब कारण जानने की उत्सुकता बढ़ गई थी। वास्तविकता का पता लगाना अनिवार्य-सा हो गया था। एक रात उसने धीरज से कहा, 'किसी दिन फुर्सत निकाल

कर मुझे आजमगढ़ छोड़ आओ।'

'आजमगढ़ ! क्यों !!'

'यहाँ और वहाँ में अन्तर क्या है ? तुम्हें भी मेरी चिन्ता से छुट्टी मिल जायेगी। तुम्हें तो चुनाव का बहाना मिल गया है। अब चाहे दिन भर बाहर रहो या रात भर। रूनियाँ से तो अब कोई सरोकार रहा नहीं।'

धीरज ने तनिक उखड़कर कहा, 'सरोकार तो तब रहता, जब दिन रात तुम्हारे पास बैठा तुम्हारे पैरों को दबाया करता ? अजीब हाल है तुम लोगों की नासमझी का। अगर अगले चुनाव में जीत न सका तो भोजन कहाँ से करेगी ? फिर परसाँ जाकर कन्डे ही पाथना होगा। समझीं ?' धीरज ने क्रोध व्यक्त करके अपनी वास्तविकता को छिपाने का प्रयत्न किया था।

'और तुम्हें हल चलाना होगा ? रूनियाँ बेवकूफ नहीं है धीरज। झूठा गुस्सा दिखाकर असलियत को छिपाओ नहीं। हम सब समझते हैं। हमें आजमगढ़ भेज दो, बस। भाग में जो लिखा है उसे कौन मेट सकता है ? हम तुम्हारे रास्ते का रोड़ा नहीं बनना चाहते।'

'देखो रूनों, बेकार की बात बढ़ाओगी तो बात बढ़ जायेगी, मैंने तुमसे क्या छिपाया है ? तुमने किस अभिप्राय: से यह बात कही है। तुम्हें इतना बददिमाग़ नहीं होना चाहिये कि जो मुँह में आए बक दो। वाह ! मैंने कन्डे पाथने को कह दिया तो तुमने भी झट से हल चलाने को कह दिया। जैसे कोई लिहाज रहा ही नहीं।' बात बढ़ने लगी थी।

'दोनों जून रोटी खिलाते हो न ? अब तो इस तरह की बातें करोगे ही। कुछ दिनों बाद मारना-पीटना भी चालू कर दोगे और अन्त में घर से बाहर। ठीक है।' वह उठी और अपनी चारपाई पर जाकर लेट गई।

धीरज भी अपनी चारपाई पर जाकर लेट रहा। आज प्रथम बार दोनों में लड़ाई हुई थी।

दूसरे दिन धीरज ने रूनियाँ को मनाया। अपने कहे हुए शब्दों पर

पश्चाताप किया और उन्हें भूल जाने के लिए बार-बार कहता रहा। रूनियाँ मुँह लटकाए बोली, 'हमने तुमको अपना मन दिया है धीरज, तन नहीं। कुछ समय के लिए यह तुम से दुखी हो सकता है पर तुम से अलग नहीं हो सकता है। चाहे हम तुम्हारे पास रहें या न रहें। तुम्हें प्यार किया है तो जीवन के अन्त तक निभायेंगे।'

धीरज चुप रहा।

धीरे-धीरे तीन-चार दिनों बाद पुन: स्त्री-पुरुष में हँसी-खुशी लौट आई। इस खुशी को लाने में धीरज की ओर से ही अधिक प्रयास था। रूनियाँ ने समभाव से हाँ में हाँ मिला दिया था। धीरज अब नियमित रूप से संध्या समय आता, घण्टे-दो-घण्टे बैठकर अपने प्यार का झूठा प्रदर्शन करता और तब कनॉट सरकस को जाता। अब अधिकतर उसकी बैठक रंजना के घर पर होने लगी थी।

एक दिन रूनियाँ ने हँसी की, 'यह लड़ाई तो अच्छी नहीं रही। तुम्हारी सारी आदतें बदल गई।'

'क्या करता मजबूरी थी वरना तुम हाथ से न निकल जातीं। मुझे तो दोनों देखना है। अब तुम्हारा गुस्सा शांत हो गया है फिर पुराने ढर्रे पर आ जाऊँगा।' धीरज ने उपयुक्त अवसर पर अपनी बात कही थी।

रूनियाँ का ध्यान धीरज के अन्तिम वाक्य पर न जाकर पहले वाले वाक्य पर गया। वह हंस कर बोली, 'तो तुम्हें इसका भी भय है कि हम तुम्हें छोड़कर किसी दिन जा भी सकते हैं ?'

एक का दुर्भाग्य देख चुका हूँ न सरकार। प्रत्यक्ष को प्रमाण की क्या आवश्यकता ?' धीरज ने चापलूसी की।

रूनियाँ खिलखिला कर हंस पड़ी, 'पर तुम्हारे साथ तो उलटा हिसाब है। तुम हमें छोड़ सकते हो हम तुम्हें नहीं छोड़ सकते। इस बार गलती मेरी ओर से हो गई है।'

'क्या ठिकाना भई ? काम के बनने में देर लगती है बिगड़ने में नहीं। अब तो बुढ़ापे में दूसरी औरत भी नहीं मिल सकेगी।'

'सही कह रहे हो। तुम्हारे जैसे बूढ़ों को सचमुच मिलना कठिन है।' वह पुनः हंसने लगी। धीरज भी हँसने लगा।

बात का सिलसिला बदला, 'अब तो आजमगढ़ भी जल्दी ही चलना होगा?' रूनियाँ ने पूछा।

'क्यों।'

'चुनाव की तैयारी के लिए।'

'हाँ। चलना ही पड़ेगा? प्रचार कार्य जितना शीघ्र आरम्भ हो जाय उतना अच्छा है।'

'इस बार तुम दिनेश भाई को क्यों नहीं बुला लेते। उनका प्रभाव देहात के लोगों पर बड़ा अच्छा पड़ेगा।'

'मेरे भी दिमाग में एक बार यह बात आई थी। अगर दिनेश आने को तैयार हो जाय तो फिर मुझे कोई हरा नहीं सकता। उसके व्यक्तित्व और वाणी में जादू जैसा असर है। मैं कल ही चित्रकूट के उस सेठ के पास पत्र लिखकर उसके बारे में पता करता हूँ। बड़ी अच्छी याद दिलाई तुमने।'

'अपने पास तो सारी चीजें अच्छी ही हैं। सवाल केवल परखने वाले का है।' रूनियाँ हंसने लगी।

'तभी तो पैरों पर गिर-गिरकर माफी माँगता रहता हूँ सरकार बहादुर।' उसने उसके कपोलों को चूम लिया।

३०

दरार पड़ी हुई चीज़ को केवल जोड़ा जा सकता है; परन्तु वह जोड़ किसी भी समय खुलकर पुनः अपने वास्तविक रूप में आ जाय तो आश्चर्य नहीं! जोड़ तो जोड़। धीरज और रूनियाँ के बीच में भी दरार पड़ गई थी, जो आये दिन अब खुलने लगी थी। इधर फिर कई बार

दोनों में झाँय-झाँय हो चुकी थी और इसकी सारी जिम्मेदारी धीरज की थी। वह छोटी-छोटी बातों पर उखड़ जाता और रूनियाँ को भला-बुरा कहने लगता। यद्यपि रूनियाँ भी मुँह तोड़ जवाब देती; किन्तु अन्त में उसे ही झुकना पड़ता और वह आँसू बहाती हुई चुप हो जाती।

उधर धीरज की दशा उलटी थी। उसके मस्तिष्क का संतुलन बिगड़ गया था। क्रोध अधिक आने लगा था। रूनियाँ की प्रत्येक बात अप्रिय लगने लगी थी। आगे-पीछे का ध्यान नहीं रह गया था। काम की पिपासा बढ़ गई थी। रंजना उसकी नस-नस में समा गई थी। वह अपने भविष्य से अपरिचित-सा हो गया था।

एक दिन की बात है। रात में धीरज देर से आया। रूनियाँ ने मीठे शब्दों में उलाहना दी। धीरज बिगड़ पड़ा। अनजाने में रूनियाँ के मुँह से भी दो-चार शब्द निकल गये। धीरज का क्रोध भड़क उठा और वह क्षण भर में आपे से बाहर हो गया। अन्त में मारने-पीटने की नौबत तक आई। बगल वाले एम० पी० की पत्नी ने तब आकर बीच-बचाव किया।

दूसरे दिन उन्हीं श्रीमती ने रूनियाँ से बतलाया, 'आप बहुत अंधेरे में हैं मिसेज पंडित। शायद आपको जानकारी नहीं है?'

रूनियाँ ने आश्चर्य से आँखें फैलाईं, 'कैसी जानकारी श्रीमती जी? मैंने आपका भाव समझा नहीं।'

'आप के हसबेन्ड का रास्ता खराब हो गया है। वह किसी और लड़की के चक्कर में हैं। उसी की वजह से आपको…।'

रूनियाँ की आँखें और फैल गईं, 'आपको कैसे मालूम?'

'मेरे हसबेन्ड ने बताया था। उन्होंने कई बार धीरज बाबू को उस लड़की के साथ घूमते हुये देखा है।'

'कहाँ।'

'कनाॅट सरकस पर।'

रूनियाँ का सन्देह सत्य निकला। धीरज के परिवर्तन का कारण

समझ में आ गया। उसके नेत्र और सजल हो आये। उसने सिर झटका लिया, 'क्या उस लड़की के विषय में भी उन्हें कुछ जानकारी है ?'

'मेरे हसबेन्ड को ?'

'हाँ।'

'नहीं ! लेकिन उनके अनुमान से वह लड़की अच्छी नहीं है। बदचलन मालूम पड़ती है। सम्भवत: वह रहती भी वहीं कहीं है।'

रूनियाँ के नेत्रों से टप-टप आँसू गिर पड़े।

'मैं यह बात आप से कई बार कहने को सोच कर भी संकोचवश नहीं कह सकी थी। अब आपको समझदारी से काम लेने की आवश्यकता है। झगड़ा करने से जीवन अधिक दु:खमय हो जायेगा।'

'आप के विचार से अब भी किसी समझदारी के लिये रास्ता शेष है ?'

'नहीं है तो भी कोई न कोई निकालना ही पड़ेगा।'

रूनियाँ चुप रही।

'अच्छा।' श्रीमती जी उठकर चली गईं।

रूनियाँ की आँखें बिलख उठीं और घण्टों बिलखती रहीं। अतीत के चित्र सामने आने लगे और हृदय की व्यथा को बढ़ाकर ओझल होते गये। अतीत के उपरान्त वर्तमान और फिर भविष्य। कितना परिवर्तन ! कितनी विषमता !! वह तड़प उठी। मालूम पड़ा हृदय फटकर अलग हो जायेगा। उसके आँसू और तेजी से बहने लगे।

संध्या होने को आई तब कहीं कुछ जी स्थिर हुआ। वह उठी। मुँह-हाथ धोया। नौकर को बुलाकर चौके सामान ठीक करने को कहा। पुन: विचारों का ताँता बंधने लगा। जीवन-मार्ग का निर्णय होने लगा और अन्त में निर्णय कर ही लिया। उसे संतोष के साथ-साथ शान्ति मिली। उसकी आत्मा से आवाज आई—प्रेम करने वाले को उसके प्रेम से मतलब होना चाहिये प्रेमी से नहीं। सोने में सुगन्ध नहीं मिल सकी तो क्या हुआ ? सोना तो उसके पास है।

रूनियाँ ने धीरज से किसी प्रकार की चर्चा नहीं की। मौन बनी रही। ज्वालामुखी की भाँति सम्पूर्ण ज्वाला को भीतर दबा लिया। रात में उसने भोजन के लिये पूछा तो धीरज ने खाने से इन्कार कर दिया। रूनियाँ चुप हो रही और स्वयं भोजन करके सो रही। सवेरे धीरज जल्दी निकल पड़ा और कहता गया कि रात में वह देर से लौटेगा।

× × ×

धीरज, रंजना को आगरे ताजमहल दिखलाने ले जा रहा था। जब वह उसके घर पहुँचा तो वह सजी-धजी खड़ी थी। धीरज उसे देखता रह गया। सुन्दरता साकार हो गई थी, 'आईये चलिये।' धीरज बोला, 'अब तो रास्ते में भगवान ही मालिक है।'

'क्या मतलब ?' रंजना ने बड़े ढब से अपनी आँखों को नचाया।

'कोई खास नहीं। एक्सीडेन्ट होने की बात बतलाई है।'

'क्यों ?'

'जब इतनी दूर से आँखें चौंधिया रही हैं तो बगल में बैठने पर क्या होगा ? न स्टेरिंग दिखलाई पड़ेगी न सामने की सड़क।'

'तब तो मैं जाने से रही। अपनी जान फालतू नहीं है।'

'यही मैं भी कहने वाला था। अपनी भी बचाकर रखनी है; अन्यथा इतने दिनों के परिश्रम पर पानी फिर जायेगा।'

'क्यों ?'

'रंजना जी दुबारा कहाँ मिल पायेंगी।'

'चुप रहिये।' वह मुसकराई, 'चाय बनवाऊँ या कनॉट सरकस पर चलकर पीने का इरादा है ?'

'वहीं चलिये। आईये बैठिये। बहुत देर हो गई है।'

'देर आपने की है। मैं तो अपने टाइम से तैयार हो गई थी।' रंजना मोटर में बैठ गई।

धीरज ने स्टार्ट की और मोड़ता हुआ कनॉट सरकस पर आया।

कस कर नाश्ता हुआ और फिर यात्रा आरम्भ हुई। दिल्ली नगर से जब कार बाहर निकल गई तब धीरज बोला, 'गलती हुई। साथ में ड्राइवर भी ले लेना था।'

'क्यों ?'

'दूर का सफर है। थकान आ जाएगी।' धीरज ने बड़ी गम्भीरता से कहा था।

'फिर ?'

'फिर क्या ? कोई उपाय सोचना होगा।'

'उपाय सोचने की जरूरत नहीं। लौट चलिए। कल चलें।'

'नहीं। इसके लिए उपाय है।'

'क्या ?'

'आप आज मुझ से चिपक कर बैठ जाइए। थकान आयेगी ही नहीं।' वह हंसने लगा।

रंजना ने मुंह बनाया और किनारे को खिसक गई।

'अरे ! यह खूब रही। समीप आने को कहा तो आप दूर खिसक गईं।'

'अभी थकान कहाँ आई है ? जब आने लगेगी तो चिपक जाऊँगी।' वह भी हंसने लगी।

धीरज ने उसका हाथ पकड़कर खींच लिया। रंजना ने कोई आपत्ति नहीं की।

इसी प्रकार की सरस बातों के वातावरण में दोनों आगरे पहुँच गए। होटल में भोजन हुआ; तदुपरान्त फतेहपुर सीकरी देखने चले गए। वहाँ से लौटने पर किला देखने चले गए। साथ में गाइड प्रत्येक स्थान का विवरण देता हुआ चल रहा था। उसने ऊपर वाले उस कमरे को भी दिखलाया जिसमें लगे हुए छोटे से शीशे के टुकड़े में ताजमहल प्रतिबिम्बित हो रहा था। वह बोला, 'यह आर्टीफिसियल है हुजूर। ओरिजिनल तो अंग्रेज निकाल ले गए।' सामने बहुत दूर जमुना के उस पार ताजमहल चमक रहा था।

गाइड ने अकबर का मीना बाजार, शाहजहाँ का कारागृह और बेगमों के ठंडे और गर्म पानी के स्नानगृह भी दिखलाए जिनकी छतें प्रकाश जलाने पर तारों भरे आकाश की छटा को उत्पन्न करने में समर्थ थीं। अन्त में दरबार-ए-आम को दिखला कर जब वह बाहर को चला तो बोला, 'आइये एक चीज आपको और दिखला दें।' वह दोनों को साथ लेकर किले की दीवार पर चढ़ गया।

'माई गाड', रंजना ने धीरज का हाथ पकड़ लिया, 'यहाँ तो खड़ा होना मुश्किल है। उफ्, इतनी ऊँचाई ?'

'मेम साहब जरा हिम्मत करके नीचे की ओर झाँके तो दिखलाऊँ।' गाइड बोला।

रंजना ने नीचे झाँका। गाइड ने उङ्गली से संकेत किया 'देखिये, वह पत्थर का बना हुआ घोड़ा अमरसिंह राठौर का है। वह इसी जगह से घोड़े के साथ जम्प कर गये थे।'

'जम्प कर गये थे ?' रंजना के आश्चर्य का ठिकाना नहीं था।

'जी हाँ। घोड़ा तो मर गया था लेकिन वह इसी नहर से तैरते हुए आगे जमना को पार कर भाग निकले थे।'

'क्यों ?' रंजना पीछे हट गई।

अमरसिंह की कथा बतलाता हुआ गाइड बाहर आया। धीरज ने एक पाँच रुपये वाला नोट उसकी हथेली पर रख दिया। गाइड ने झुक कर सलाम किया। मोटर चल पड़ी।

दोनों वहाँ से पुनः उसी होटल में आए। मुंह-हाथ धोया। जम कर नाश्ता हुआ। तत्पश्चात् कुछ देर आपस में चुहल-बाजी होती रही। फिर बाहर निकले। शाम हो चुकी थी। शहर की रौनक बढ़ गई थी। बिजली के प्रकाश में असुन्दर भी सुन्दर दिखने लगे थे। बाजारों की शोभा निखर आई थी। रंजना की राय से एक चक्कर बाजारों का भी लगा। कुछ खरीदारी हुई और तब ताजमहल के लिए प्रस्थान हुआ।

रात्रिदेवी का अवगुंठन हटाकर चाँद जबरदस्ती पर उतर आया था। वह बड़ी लुभावनी दिखने लगी थी।

जमुना के किनारे कल-कलनाद को सुनता हुआ ताज अतीत के गौरव का, किसी प्रेमी के प्रेम का मूकभाषा में बखान करता हुआ मौन खड़ा था। रंजना की हथेली को अपनी हथेली में दबाये धीरज घूम-घूम कर सब दिखलाता रहा और अप्रत्यक्ष रूप से मुमताज और शाहजहाँ की कहानी बताकर अपने प्रेम की पुष्टि कर रहा था। चतुर रंजना भाव-विभोर होती रही।

काफी देर तक देखते रहने के उपरान्त दोनों नीचे आये। धीरज ने प्रस्ताव रखा, 'थोड़ी देर लान में बैठ लिया जाय।'

'फिर लौटने में देर नहीं होगी?'

'रात अपनी है। आओ।' वह रंजना का हाथ पकड़कर खींचता हुआ एक कुंज की ओट में जा बैठा।

'क्यों?', धीरज ने पूछा, 'हम लोगों की हनीमून वाली रात अगर यहाँ बीते तो कैसी रहेगी?'

'ख्याली पुलाव पकाने के लिए ख्याल बुरा नहीं है। इससे दिल भी बहलता है और सन्तोष भी मिलता है।'

धीरज ने उसका हाथ पकड़ लिया और कुछ गंभीर होकर बोला, 'बहुत दिनों तक हंसी हो गई रंजना। अब सहन के बाहर है। तुम्हारा मैरिज करने का विचार कब तक है?'

रंजना उसकी ओर देखकर मुसकरा उठी, 'तुम तो बिल्कुल आपे से बाहर हो गए। अगर अभी यह हाल है तो भविष्य में क्या होगा? तुम्हारे पास दिमाग तो है नहीं। एलेक्शन लड़ोगे या मैरिज करोगे? चाइल्डिश।' उसने हाथ खींच लिया।

धीरज ने पुनः हाथ पकड़कर उसे अंकों में भरना चाहा।

'होश ठिकाने है? इट इज़ पब्लिक प्लेस बुद्धू मैन।' वह खड़ी हो हो गई, 'उठो चलें।'

धीरज खड़ा हो गया।

कार जब आगरे के बाहर निकल गई तो धीरज ने कहा, 'रात का सफर है, थकान आने पर हाथ से स्टेरिंग छूट सकता है। इसलिए आप लोगों से अनुरोध है कि वह समीप बैठने का कष्ट करे।'

'अनुरोध सुन लिया गया। उस पर बिचार नहीं हो सकता। दुबारा कहने की जुर्रत न की जाय।' वह मुसकराती हुई धीरज से सट कर बैठ गई।

३१

एक विचित्र घटना घटी। छुट्टी का दिन था। सरकारी तथा गैर-सरकारी सभी संस्थायें बन्द थीं। सविता को चाँदनी चौक से कुछ सामान खरीदना था। दोनों सहेलियाँ तैयार हुईं। बाहर आकर स्कूटर लिया और चाँदनी चौक चल पड़ीं। लगभग दिन के ग्यारह बजे होंगे जब उनका स्कूटर लालकिले वाले चौराहे पर आकर रुका। 'फव्वारे तक चलो।' सविता ने स्कूटर वाले से कहा।

फव्वारे पर स्कूटर आ गया। दोनों उतर पड़ीं। अभी पाँच-सात कदम ही चल पाई होंगी कि स्टेशन से आती हुई सड़क पर शोर सुनकर उनका ध्यान बटा। देखा—एक पागल के पीछे पन्द्रह-बीस लड़के चिल्लाते चले आ रहे थे, 'बना है; निकलने न पाये; खुफिया है; पाकिस्तानी है; पकड़ लेना; मघइया है; चोर है; टिकिया चोर है; चिलम चोर है; निकलने न पाये······।' बीच-बीच में दो-चार पत्थर भी उस पर फेंक दिये जाते थे। पगला किटकटा-किटकिटा कर उनको खदेड़ता और चिल्लाता, 'रे साले, हरामी के पिल्ले, उल्लू के पट्ठे, अपने बाप को पहिचानते नहीं, अपनी अम्मा के पास क्यों नहीं जाते······।' वह सड़क

से पत्थर उठाकर उन पर फेंकता और पुनः लौट पड़ता ।

उसका लौटना होता कि लड़के फिर उसके पीछे 'टिकिया चोर है, निकलने न पाये, मधइया है,' चिल्लाते हुये लग लेते और कंकड़-पत्थर फेंक कर मारने लगते ।

पता नहीं क्यों सविता उस पागल को ध्यान से देखती हुई ठिठक गई । रंजना ने डाँटा, 'चल, खड़ी क्यों हो गई ? पागलों को कभी देखा नहीं है क्या ? वह आगे बढ़ी ।'

पगला समीप आ गया था । सविता ने जैसे उसे पहचान लिया हो । एक बारगी किसी व्यथा के कारण चेहरे पर उदासी फैल गई । वह पटरी से उतर कर सड़क पर आई और तेजी से आगे बढ़कर लड़कों को डाँटा । उस का डांटना समाप्त भी नहीं हुआ था कि एक पत्थर उसके सिर पर आकर पड़ा । सिर फट गया और वहीं वह चक्कर खाती हुई बहुत संभलने के उपरान्त भी गिर पड़ी । हल्ला मच गया । लोग दौड़ पड़े । रंजना भी दौड़ी । लड़के भाग गये । पागल भी बड़बड़ाता हुआ आगे निकल गया ।

सविता बेहोश थी । रंजना उसे सीधे अस्पताल ले गई । डाक्टरों ने देखा । सुइयाँ लगीं, पट्टी बंधी और उसे भर्ती कर लिया गया । सम्भवतः डाक्टरों को किसी अन्य बीमारी के उभड़ने का सन्देह हो गया था ।

होश आने पर रंजना ने पूछा, 'कोई तकलीफ तो नहीं ?'

सविता ने सिर हिलाकर नाहीं किया और आँखें बन्द कर लीं । रंजना चुप हो रही । सविता विचारों की दुनिया में चक्कर लगाने लगी । उसे इस समय शारीरिक पीड़ा नहीं वरन् मानसिक पीड़ा थी । आध घंटे बीते । पौन घंटे बीते । सविता उसी प्रकार मौन पड़ी रही । धीरे-धीरे एक घन्टे से अधिक हो गया । सविता उसी प्रकार पड़ी रही; किन्तु अनायास उसके नेत्र कोरों से निकलते हुये आँसुओं को देखकर रंजना चौंकी, 'सविता ।' उसके मुँह से निकला ।

सविता ने आँखें खोलीं ।

'क्या बात है ? कोई तकलीफ ?'

इतनी देर बाद सविता बोली, 'नहीं ।'

'घबड़ा नहीं । बहुत जल्द ठीक हो जायेगी । मामूली-सी चोट है ।' रंजना उस चोट से अनभिज्ञ थी जिसके कारण सविता की आँखों से आँसू निकल पड़े थे ।

सविता ने करवट ली और उसकी हथेली को अपनी हथेली में दबाया, 'मैं अब अच्छी नहीं हो सकती रंजना ।'

'पगली है । ऐसी चोटें तो बचपने में कितनी बार लगी होंगी ।' वह मुसकराती हुई उसके सिर को सहलाने लगी ।

सविता पुनः मौन हो गई और शीघ्र ही उसकी पलकें मुँदने लगीं । वह सो गई ।

शाम को पाँच बज रहे थे । सविता के गले और जबड़े में दर्द आरम्भ हो गया था और वह दर्द धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा था । डाक्टरों ने देखा । उनका सन्देह ठीक निकला । टिटनिस के लक्षण दिखलाई पड़ने लगे थे । होनहार को प्रबल कहा गया है ।

रात में एक का समय होगा । दर्द बढ़ गया था । सारे शरीर में ऐंठन जैसी होने लगी थी । बदन अकड़ने लगा था । डाक्टर पुनः आया । सुईयाँ लगाईं और सान्त्वना देकर चला गया । रंजना ने उससे बाहर आकर पूछा । डाक्टर ने बतलाया, 'इट इज़ टिटनिस । वी विल ट्राई अावर बेस्ट ।' वह लम्बे-लम्बे पैर रखता हुआ बढ़ गया ।

रंजना का मन रुआँसा हो आया; किन्तु उसने अपने को संभाला और पुनः सविता के पास आकर बैठ रही ।

सेकेन्ड-दो-सेकेन्ड तक रंजना की ओर टकटकी लगाकर देखते रहने के उपरान्त सविता के मुँह से निकला, 'तुझसे जो छिपा रखा था उसे आज सुन ले । जिसके कारण मेरा सिर फटा है वह मेरा कभी पति था । जब मैं ब्याह कर उसके घर गई थी उस समय वह बनारस यूनिवर्सिटी का स्टूडेन्ट था । उसके घर में उसका पिता और एक छोटी बहन

थी। विवाह के एक माह बाद यूनिवर्सिटी खुलने पर वह बनारस चला गया। मैं घर में अकेली रह गई। मेरा भाई मुझे विदा कराने आया परन्तु बुड्ढे ने इनकार कर दिया। महीना भर भी नहीं बीता होगा कि उसने अपनी हरकत शुरू कर दी।'

'तुम्हारे फादर-इन-ला ने ?' रंजना ने आश्चर्य व्यक्त किया।

'हाँ। उसकी नीयत खराब थी।' सविता रुकी, 'अरे राम बहुत दर्द है !!'

'थोड़ा आराम कर ले सविता। इसे मैं बाद में सुन लूँगी। सोने की कोशिश कर।'

'तो मैं कह रही थी कि उसकी,' सविता ने बिना रंजना की बातों पर ध्यान दिये आगे आरम्भ किया, 'नीयत खराब थी। उसने एक दिन मेरा हाथ पकड़ लिया और इधर-उधर की बातें कहने लगा। मैंने हाथ झिटकते हुये डाँटा और उसके लड़के से कहने की धमकी दी। वह गिड़-गिड़ाने लगा और बार-बार माफी माँगता रहा। मैंने इसकी चर्चा उसके लड़के से नहीं की जब वह दशहरे की छुट्टियों में घर आया था। दशहरे में मेरी विदाई हो गई। मैं मायके आ गई।' सविता ने अपने दोनों हाथों से जबड़े को दबाया, 'यह फटा जा रहा है रंजना ! यह बीमारी कैसी है ?'

'मैं कह तो रही हूँ ! थोड़ा आराम करने की कोशिश कर ! बोलने से दर्द बढ़ेगा !'

'फिर न मालूम क्यों,' सविता कहने लगी, 'मेरे पति ने चिट्ठी पत्री बन्द कर दी। अन्त में मैंने अपनी मासी द्वारा पिताजी के कानों में बात पहुँचाई। पिताजी स्वयं बनारस गए और उससे भेंट करके कारण पूछा। उस ने कोई कारण नहीं बताया और शीघ्र आने को कह कर उन्हें विदा किया। पिताजी के आने के एक सप्ताह बाद वह आ धमका। मुझसे बड़े प्यार से मिला और अपनी गलती के लिये क्षमा माँगी। मैं प्रसन्न हो गई। दो दिन रुककर तीसरे दिन मुझे भी बनारस ले आया—घुमाने के लिये। उन दिनों बनारस में कोई मेला चल रहा था। गंगा स्नान के लिए लाखों आदमी देहातों और दूसरे शहरों से आये हुए थे।'

'दूसरे दिन वह मुझे भी गंगा स्नान के लिए ले गया। भीड़ बहुत थी। पहले उसने मुझे नहाने के लिए कहा। मैं नहाने के लिए गंगा में उतरी। डुबकी लगा कर जो ऊपर निकली तो वह सामने नहीं था। मैं शाम तक वहीं पर बैठी रही। वह नहीं आया। कैसे आता ? वह आने के लिए गया कब था ? सूर्यास्त हो चला था जब एक बुढ़िया ने आकर मेरे विषय में जानने का प्रयत्न किया। मैंने बताया। उसने मुझे घर पहुँचाने का वायदा किया और अपने साथ ले गई।' सविता कराह उठी, 'हाय री अम्मा ! जान क्यों नहीं निकल जाती भगवान ?' उसने अपनी गर्दन को दबाया।

रंजना ने संकेत से नर्स को बुलाया और डाक्टर को सूचित करने के लिए कहा।

सविता को कहने की जैसे धुन सवार हो गई हो। उसने रंजना का हाथ दबाया, 'वह प्रोस्टीट्यूट हाउस था रंजना। मैं उसमें फंस गई। मेरा निकल भागना कठिन हो गया। फिर भी जहाँ तक हो सकता था मैं अपने को बचाती रही। लगभग दो महीने भी नहीं गुजरे होंगे कि वही एक रात आ गया।'

'कौन ? तेरा हसबेन्ड ?' रंजना के मुँह से निकल पड़ा।

'हाँ। वही शैतान। घूंघट की ओट में अपने मुँह को छिपाये मैं उसे अपने कमरे में ले आई। किवाड़ बन्द किये और फिर घूंघट हटा दिया। उसके चेहरे पर हवाईयाँ उड़ने लगीं। वह पसीने में भीग गया। मैं उसे घृणा की दृष्टि से देखती हुई बोली "तुमने मेरा जीवन जिस प्रकार नष्ट किया है, ईश्वर चाहेगा तो तुम्हारा भी नष्ट हो जायेगा।" मैंने किवाड़ खोल दिये और उसे नीचे उतर जाने के लिए कहा। वह भीगी बिल्ली की भाँति बिना मेरी ओर देखे नीचे उतर गया। अरे बाप रे।' सविता कराहने लगी, 'डाक्टर को बुला रंजना। बहुत बर्दाश्त किया। अब नहीं

हो रहा है। सारा बदन ऐंठा जा रहा है।'

रंजना खड़ी हुई। सविता ने पुनः हाथ पकड़ लिया, 'रुक जा ! पूरी कहानी सुन ले। मैं किस तरह यहाँ से……।'

रंजना हाथ छुड़ाती हुई भाग कर वार्ड के बाहर आई। सामने से डाक्टर आ रहा था। वह रुक गई। डाक्टर ने आकर पुनः सुईयाँ लगाईं तथा अन्य उपचार किये; परन्तु मृत्यु का उपचार कहाँ है ? सुबह पाँच बजते-बजते सविता के जबड़े जकड़ गये। आवाज़ बन्द हो गई। हृदय की गति रुकने लगी। सवेरा हुआ। सविता ने आँसू भरे नेत्रों से रंजना की ओर देखा। क्षण भर बाद प्राण पखेरू उड़ गये। रंजना बिलख उठी।

संध्या समय जब रंजना सविता के सामानों को उलट-पुलट रही थी तो उसमें उसकी डायरी भी मिली जिस की अन्तिम रुबाई थी—

मुझ को दुनियाँ में कोई प्यार से देखा न करे,
दास्ताँ मेरी सुने अपनी सुनाया न करे;
मैं हूँ दुनियाँ से अलग मेरा अन्दाज़ नया—
बातें चाहे जो करे पास बुलाया न करे।

रंजना की आँखों से आँसू बह निकले। तभी धीरज ने कमरे में प्रवेश किया था।

३२

जब पहाड़ भी अपने अन्दर की ज्वाला को उगलने में समर्थ है तो जीवधारियों के विषय में क्या कहना ? उसके पास तो बहुत-सी उनकी स्वाभाविक दुर्बलतायें हैं जिनके कारण वे सब कुछ कहने करने को बाध्य हैं। ऐसा क्यों और कैसे हो गया—यह प्रश्न यहाँ नहीं उठता। सब सम्भव है और सब असम्भव। रूनियाँ के सम्बन्ध में भी ऐसी बातें

थीं। उसने अपने अन्तर में जिस ज्वाला को छिपा रखा था उसका एक न एक दिन विस्फोट होना स्वाभाविक ही था। वह कब तक बुद्धि के बल पर उसे रोके रखती। भावनायें, अभ्यास के द्वारा नियमित हो सकती हैं संयमित नहीं और यदि संयमित हुईं भी तो उन्हें क्षण भंगुर ही कहा जायेगा। वे कभी भी बन्धन को तोड़ सकती हैं।

एक दिन ऐसा ही हुआ। धीरज ने कोई ऐसी बात कह दी जिससे रूनियाँ तिलमिला उठी। बात बढ़ी। धीरज ने अधिक कठोर शब्द कहे। रूनियाँ अपने को संभाल कर भी संभाल न सकी। प्रत्युत्तर में उसके मुँह से भी वैसे ही शब्द निकले। बात बढ़ गई। धीरज ने बिगड़ कर कहा, 'इसीलिए कहा गया है कि जैसा परिवार होगा वैसा उसके पर वाले होंगे। अहीर तो अहीर। नाली के कीड़े को नाली ही पसन्द आयेगी। कहाँ से मैंने यह बवाल सिर मोल ले लिया। जीवन चौपट हो गया।'

रूनियाँ को उगलने के लिये विवश हो जाना पड़ा, 'अब बना लो। तुम्हारे जैसा कपटी और पापी दुनिया में कौन होगा। हमें घर में बिठला कर बाहर दूसरी औरतों के चक्कर में रात-रात भर घूमते हो और पूछने पर चुनाव का बहाना बना कर हमें बेवकूफ बनाते हो ? तुम्हें अपनी नीचता पर……।'

धीरज के मुँह पर जैसे किसी ने कालिख पोत दी हो। उसका चेहरा फक पड़ गया; किन्तु उसे रूनियाँ भाँप न पाये इसलिए वह तड़प कर बोला, 'अब तुमने तिरिया चरित्तर शुरू किया ? वैसे नहीं तो ऐसे, क्यों ? मैं रात भर औरतों के चक्कर में घूमता हूँ ?'

'बिल्कुल घूमते हो और आज से नहीं सालों से घूम रहे हो। तुम्हें तो खान्दानी चाहिए क्योंकि तुम भी खान्दानी वाले ठहरे।'

'देख रूनियाँ, मुझ पर इस तरह का दोष लगाना ठीक नहीं। मैं बताये देता हूँ इसका नतीजा बड़ा बुरा होगा।'

रूनियाँ उपहास की हंसी हंसती हुई बोली, 'हम तुम्हारे नतीजे से डरते नहीं हैं। जब एक को छोड़ सकते हैं तो दूसरे को भी छोड़ सकते

हैं। लेकिन……।'

'दूसरे को छोड़ कर तीसरे को कर लेना। बदचलनों का पेशा क्या है ? मैंने……।'

रूनियाँ का क्रोध भड़क उठा, 'देख धीरज, हम तेरी हर बात को सह सकते हैं; लेकिन मेरे ऊपर अगर किसी तरह का दोष लगाएगा तो हम से बुरा और कोई नहीं होगा ? बदचलन तू है या हम ? वह लड़की कौन है जिसे अपने संग घुमाता है ? तेरी बहन है या मौसी ?'

धीरज भी उखड़ा। उसे अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिये उखड़ना चाहिये था, 'तूने उसे देखा है ?'

'देखा हो या नहीं, हम पूछते हैं तू किसी को साथ लेकर घूमता है या नहीं ?'

धीरज चक्कर में पड़ गया। जब और कोई उत्तर न सूझा तो उसने जल्दी से कह दिया, 'तू यह सब पूछने वाली होती कौन है ?'

'तेरी स्त्री और कौन ?'

'जबर्दस्ती। मैंने तुमसे ब्याह कब किया है ?' ऊलजलूल की बातें बढ़ती जा रही थी।

'तूने हमें रखैल की तरह रखा है क्या ?'

'बिल्कुल रखैल की तरह रखा है ?'

'तो तू इस चक्कर में है ? अच्छी बात है। फिर देखते हैं तू उससे ब्याह कैसे करता है ?'

'और अब मैं भी देखता हूँ कि तू इसे रोक कैसे लेती है ?' धीरज के मुँह से वास्तविकता निकल गई।

'सही बात मुंह से निकल गई न ? अब बोल बदचलन तू है या हम। अगर तुझे जेल न भेजा तो मेरा नाम रूनियाँ नहीं। तू अपने एम० पी० के चक्कर में न रहना।

'रूनियाँ', धीरज चिल्लाया, 'बहुत बढ़ कर बातें मत कर, वरना आज बहुत बुरा हो जायेगा।'

'बहुत बुरा क्या होगा ? हमारा गला घोंट देगा। बस। घोंट ले। फिर तुझे भी तो फाँसी होगी ?'

धीरज ने खींच कर उसके गाल पर थप्पड़ मारा। 'फाँसी की बच्ची। पहले मैं तेरी फाँसी कर दूं उसके बाद मेरी होती रहेगी। हरामखोर। सूअर की……।'

'और मार। जितना जी में आये मार।' रूनियाँ रोने लगी और अपना सिर पत्थर पर पटक दिया। सिर फट गया। रुधिर की धारा बह चली।

धीरज के क्रोध में कमी आना स्वाभाविक था। फलतः वह बाहर निकला और मोटर लेकर चला गया। नौकर बाहर खड़ा सब सुन रहा था। वह अन्दर आया। रूनियाँ को खून से सना देखकर हक्का-बक्का रह गया। तब तक बगल वाली श्रीमती जी भी आ गईं। उन्होंने रूनियाँ को उठाया। दवा मंगाई। पट्टी बाँधी और सहानुभूति प्रदर्शित करती हुई उसे खाट पर लिटा दिया। नौकर बाहर चला गया। थोड़ी देर बाद वह भी चली गई।

रूनियाँ खाट पर लेटी जीवन की गुत्थियों को सुलझाने लगी। उसे दुःख था कि आज उसने बड़ा ओछा व्यवहार दिखलाया। उसे ऐसा नहीं करना चाहिये था। यदि वह धीरज को हृदय से प्रेम करती है तो फिर उसके प्रति ऐसा व्यवहार क्यों ? उसे अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिये। उसके दोनों हाथ अपने आप जुड़ गये और वह ऊपर देखती हुई ईश्वर को सम्बोधित करके मन ही मन बोली, 'भगवान मेरी गलती को क्षमा करना। हमने वह सब क्रोध में किया है। भविष्य में ऐसी गलती नहीं होगी।' उसे कुछ शान्ति मिल गई।

उसने करवट बदली, विचारों का पुनः तारतम्य आरम्भ हुआ। प्रश्न उठा—'अब आगे क्या करना है ?'

उत्तर मिला—'धीरज के दुःख में दुःख और सुख में सुख मान कर चुपचाप जीवन-निर्वाह करना है।'

'पर क्या जीवन की इतनी लम्बी अवधि इस प्रकार कट सकेगी ? आज की भाँति आगे भी तो ऐसी स्थिति आ सकती है। इसके अतिरिक्त यह भी तो सम्भव है कि धीरज उसे छोड़ कर उस लड़की के साथ रहने लगे।'

पुष्टि हुई—'बिल्कुल सम्भव है। उसके चरित्र का पतन हो गया है। वह ऐसा कर सकता है।'

'फिर ?'

'फिर एक ही रास्ता है। छोड़ कर चल देना। इससे उचित और उत्तम मार्ग दूसरा नहीं।'

निर्णय हो गया। दिन समाप्त हुआ। बड़ी रात गये धीरज आया और अपनी खाट पर सो गया। सवेरे जल्दी कहीं चला गया। रूनियाँ से बातचीत नहीं की।

दिन में कोई बारह-एक बजे बनारस की ओर गाड़ी जाती थी। नौकर से थोड़ी देर में लौटने को कह कर रूनियाँ बाहर निकली और स्टेशन को चल पड़ी। उसके पास शरीर पर वस्त्र के अतिरिक्त और कुछ नहीं था।

३३

डाईरेक्टर महोदय ने उँगुली से कलाई पकड़ी और फिर बाँह पकड़ने के लिए प्रयत्नशील हो उठे। उन्हें अपनी वासना की तृप्ति करनी थी और शीघ्र से शीघ्र करनी थी। रंजना के रूप और यौवन का नशा उनकी नस-नस में समा गया था। वह भीतर ही भीतर तड़प रहे थे। आज कई हफ्तों की टालमटोल के बाद तो संध्या-वाला प्रोग्राम तय हो पाया था। रंजना ने सात बजे शाम को सफदरजङ्ग पर मिलने को कहा था।

यद्यपि रंजना ने डाईरेक्टर महोदय को काफी घिसा था। उन्हें जहाँ तक बुद्धू बना सकती थी, बनाया था—और अब भी बना रही थी, लेकिन आगे कब तक ? डाईरेक्टर महोदय तो एक-एक कदम आगे बढ़ रहे थे। उनकी समझ से वह रंजना को बुद्धू बना रहे थे। संध्या को सात बजे रंजना सफदरजंग पर खड़ी मिली। डाईरेक्टर महोदय ने बिठाया और कुतुबमीनार की ओर न जाकर गाड़ी दूसरी ओर मोड़ दी।

'इधर कहाँ ?' रंजना ने पूछा।

'चलो, दिखाते हैं। बड़ा सुन्दर स्थान है। देख कर तबीयत खुश हो जायेगी। एकान्त में दो व्यक्तियों के मिलने के लिए स्थान बड़ा उपयुक्त है।' डाईरेक्टर साहब बड़ी दूर की बात कह रहे थे।

रंजना उनकी बातों का भावार्थ समझ गई। वह चुप रही। एक नई आशंका से उसका हृदय काँप उठा।

कार एक बड़े बाग के फाटक में घुसी। ऊँची चारदीवारी से घिरा हुआ बाग काफी लम्बे-चौड़े दायरे में था। छोटे-बड़े हर तरह के फूलों और फलों के वृक्षों से बाग की रमणीयता और सुन्दरता निखरी पड़ रही थी। बाग के मध्य में गोल गुम्बदनुमा एक ऊँचा-सा मकान बना था। जिसे शिल्पी ने विशेष ढंग से संवारा भी था। इसके अतिरिक्त कई छोटे-बड़े दो-दो तथा तीन-तीन कमरों के बंगले बने थे जो प्रत्येक रूप से सुसज्जित थे। गोल गुम्बद के पास डाईरेक्टर महोदय ने कार रोकी। एक माली ने आकर सलाम किया, 'सरकार के लिये पीछे वाला', उसने उंगुली से संकेत किया, 'बंगला खुला है।'

'ठीक है।' डाईरेक्टर साहब नीचे उतरे।

माली चला गया।

रंजना का हृदय धक्-धक् करने लगा था किन्तु उसकी दुर्बलता से बुड्ढा लाभ न उठाये इस भय से उसने अपनी हेंकड़ी में कमी न आने दी। वह दरवाजा खोल कर नीचे उतरी और मुसकराती हुई बोली, 'ट्रू नाइस सर। पिकनिक के लिये दी बेस्ट है। हम लोगों को हमेशा

यहीं आना चाहिये। पता नहीं क्यों आपने इसे छिपा रखा था ?'

'हर स्थान का महत्त्व अपने-अपने समय पर है रंजना ! जब इसकी आवश्यकता हुई तब तुम्हें ले आया।' उन्होंने भेदभरी दृष्टि से रंजना की आँखों में देखा 'आओ तुम्हें बाग घुमा दें।'

रंजना ने चलते हुये पूछा, 'यह बाग किसका है ?'

'मेरे एक मित्र का। उन्हें बाग बनवाने का बड़ा शौक है।'

'देखने से यही जाहिर हो रहा है वरना बिना किसी लाभ के इतना पैसा खर्च करने का तुक ?'

आगे निर्जनता आने पर डाईरेक्टर महोदय ने रंजना का हाथ पकड़ लिया और बिल्कुल उससे सट कर चलने लगे। आगे से चक्कर लगाते हुये जब वह उस बंगले की ओर मुड़े तो रंजना बोली, अब लौटिये।'

'चलो थोड़ी देर बैठ कर आराम कर लें। अभी तो बहुत वक्त है।'

'नहीं चलिये। किसी छुट्टी के दिन दोपहर में आयेंगे। उस दिन मैं अपने हाथ का आपको खाना भी खिलाऊँगी।' रंजना बुद्धू बनाना चाहती थी।

'बस थोड़ी देर बैठेंगे। हार्डली फिफटीन मिनट्स आओ।' उन्होंने हाथ खींचा।

'अभी आप बुजुर्ग नहीं हुये हैं,' रंजना बला टाल रही थी, 'आईये चलिए। आप तो घंटों चलने के अभ्यस्त हैं। रंजना ने अपनी ओर खींचा।' उसे आज किसी प्रकार अपनी जान बचानी थी।

'सो तो है लेकिन बैठने की तबीयत है इसलिये कह रहा हूँ। आओ। अभी चलते हैं।' उन्होंने उसके कमर में हाथ डाल दिया।

डाईरेक्टर साहब का हाथ हटाती हुई रंजना जल्दी से आगे बढ़ गई।

कमरा सजा हुआ था और सुन्दर सोफों से शोभायमान था। रंजना को अपने सोफे पर बिठलाते हुए डाईरेक्टर महोदय ने उसे अपनी भुजाओं में खींचना चाहा। रंजना ने आपत्ति की, 'नहीं।'

'क्यों ?'

'क्यों का क्या सवाल है ? सब चीज लिमिट के अन्दर होनी चाहिए।'

'क्या मतलब ?'

मतलब साफ है। मुझे यह सब पसन्द नहीं।'

डाईरेक्टर महोदय अब भी कुछ समझ नहीं पाये थे, 'यह नाराजगी क्यों भई ? क्या······?'

'नाराजगी नहीं। यह सब ठीक नहीं है।'

'तुम्हारे में बड़ा बचपना है रंजना। इस उम्र में इतनी शर्म। हद हो गई।' डाईरेक्टर महोदय ने पुनः उसे खींचना चाहा।

रंजना हाथ छुड़ाती हुई दूसरे सोफे पर जाकर बैठ गई, 'इन्सानियत आप में बिल्कुल नहीं है। क्या इसीलिए मुझे लाये हैं ?'

डाईरेक्टर साहब का दिमाग साफ हो गया। उनका चेहरा ऐसा उतर आया जैसे किसी ने जूते मारे हों। वह तनिक कठोर शब्दों में बोले—'क्या तुम्हें आज मालूम हुआ है ? तुम मुझे बेवकूफ समझती हो ? इतने दिनों तक तुम्हारी इन्सानियत वाली नसीहत कहाँ छिपी थी ?'

'उसी का आपने नाजायज फायदा उठाया है वरना आप स्वप्न में भी इतनी जुर्रत नहीं कर सकते थे ?' रंजना के मुँह से बात निकलती जा रही थी।

'पर तुम मेरे साथ कार में बैठने की जुर्रत कर सकती थीं। क्यों ? रंजना ! तुम से अधिक दुनिया का अनुभव है। तुम्हारी चालाकी मैं समझ चुका हूँ। आज मैं जिस मन्शा से यहाँ आया हूँ वह पूरा होकर रहेगा। मैं इतनी कच्ची गोली नहीं खेलता।' उन्होंने बंदर घुड़की दिखलाई।

रंजना का शरीर सिहर उठा किन्तु उसने उसी साहस से काम लिया और इस प्रकार उपहास के स्वर में बोली जैसे वह डाईरेक्टर महोदय को कुछ समझती ही न हो, 'आप जिस हवा में हैं उसे भूल जाइये। आपको अभी मेरी जैसी लड़कियों से पाला नहीं पड़ा है। मैं जा रही हूँ। संभल कर कोई कदम उठाने की हिम्मत कीजियेगा।' वह खड़ी हो गई। तेजी से बाहर निकली और बाग के बाहर हो गई।

डाईरेक्टर महोदय को आगे कुछ करने का साहस नहीं हुआ। उनकी बंदर घुड़की, बंदर घुड़की ही बनी रही।

दूसरे दिन रंजना ने घर से इस्तीफा भेज दिया और उसका कारण वही लिखा जो था। उसने इस्तीफा की एक प्रतिलिपि मंत्री और प्रधान-मंत्री को भेज दी। साथ ही एक प्रतिलिपि डाईरेक्टर महोदय के घर के पते से उनकी पत्नी के नाम भेज दी।

रंजना ने अपनी नौकरी का जो अन्तिम परिणाम सोच रखा था वही हो गया।

× × ×

रूनियाँ परसाँ आई। गाँव में समाचार बिजली की भाँति फैल गया और देखते-देखते सारा गाँव इकट्ठा हो गया। रूनियाँ का हाल सुनकर सभी दुखी थे। कुछ स्त्रियाँ तो आँसू बहाती हुई धीरज को नाना प्रकार की गालियाँ दे रही थीं। इसी बीच धीरज के श्वसुर वृद्ध रामगुलाम पण्डित भी आ गये। गाँव के किसी लड़के ने उनसे रूनियाँ के आने का समाचार कहा था। वह भीड़ को हटाते हुए रूनियाँ के पास आकर बैठ गए और आँखों में आँसू भर कर बोले, 'बेटी।' उन्होंने उसके सिर पर हाथ फेरा, 'बुढ़ापे में लकड़ी के सहारे की आवश्यकता थी उसे भोलानाथ ने पूरी कर दी। चलो मेरे घर। जब तक मैं जीवित हूँ, तुम्हें पिता का अभाव खटकने नहीं दूंगा।' उनकी आँखों से आँसू टप-टप करके गिर गये।

'काका।' रूनियाँ उनके पैरों से लिपटकर रो उठी। 'इसी प्रकार गज को भगवान ने उबारा होगा।'

एकत्रित जन-समूह दाँतों तले उँगलियाँ दबाकर रह गया। उन्हें अपने कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था।

रामगुलाम पण्डित ने रूनियाँ का हाथ पकड़कर उठाया, 'आओ चलो बेटी।' और उसे घर लिवा लाये।

रूनियाँ के बाबू की जो थोड़ी बहुत ज़मीन थी वह रूनियाँ को मिल गई। रामगुलाम ने अपनी सारी ज़मीन रूनियाँ के नाम लिख दी

और उसे अपनी संतान की भाँति अपने घर में रख लिया। रामगुलाम पण्डित ने ऐसा आदर्श उपस्थित किया जो उधर के आस-पास के इलाकों में बेमिसाल था। उन्होंने असम्भव को सम्भव कर दिया।

३४

धीरज जब रात में आया तो नौकर ने अब तक रूनियाँ के न लौटने का समाचार दिया। धीरज ने आश्चर्य प्रकट किया और उलटे पाँव पता लगाने निकल पड़ा। वह समझ गया कि रूनियाँ उसे छोड़कर चली गई। उसे मन ही मन प्रसन्नता हुई। वह लगभग पौन घंटे बाद लौटा और उदास मन अपने कमरे में जाकर लेट गया। उसकी उदासी दिखावटी थी—दुनियादारी के लिए।

एक काँटा था वह भी साफ हो गया। धीरज को पूर्ण स्वतन्त्रता मिल गई। दिन भी अपना रात भी अपनी। गुलछर्रे उड़ने लगे। संसार रंगमय हो उठा। हर ओर खुशी ही खुशी नजर आने लगी। बहार छाने लगी। रूप-रंग संवरने लगा। चार चाँद लगने लगे। वर्तमान साकार हो उठा। भविष्य भूल गया। भूत का कहना ही बेकार था। उस पर तो आँख मूंद कर पर्दा डाला ही गया था। समय का एक-एक क्षण इतना उल्लासमय हो उठा कि उसकी कल्पना करना कठिन था।

एक दिन शाम को धीरज और रंजना टहलते हुए संसद भवन की ओर निकल गये। लौटकर जब पुनः कनॉट सरकस पर आये तो रात के आठ बज चुके थे। धीरज बोला, 'चलो आज तुम्हारे यहाँ खाना खायेंगे।'

'जी नहीं। मेरे ऊपर दया कीजिए। खाना आप अपने यहाँ खाई-येगा; मैं आपकी चालाकी सब समझती हूँ।'

'इसमें चालाकी क्या है?' धीरज अपनी गम्भीरता बनाये हुए था,

'तुम्हारे यहाँ खाना अच्छा बनता है इसलिए कह रहा था वरना……।'

'बस-बस, मुझे समझाईये नहीं। आपकी भूख का मुझे अन्दाज है। दिन में तो बदतमीजी से बाज आते नहीं फिर इस वक्त……।'

धीरज को हंसी आ गई, 'समझा। इस कारण तुम अपने घर नहीं ले जाना चाहती हो? अच्छा, तुम्हारी सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि ऐसी कोई हरकत नहीं करूँगा जो तुम्हें ना पसन्द हो।'

रंजना ने जैसे धीरज के शब्दों पर कोई ध्यान न दिया हो, 'गुड नाइट। अब मैं चली।' वह मुड़ पड़ी।

पैर बढ़ाकर धीरज भी उसके संग हो लिया, 'अब बोलो? अब कैसे रोकोगी? सड़क तुम्हारी भी है और मेरी भी।'

'तभी तो खामोश हो गई। मकान आने दो तो बताऊँगी। सिर्फ वहाँ इशारा काफी होगा। दुबारा उस मुहल्ले में घुसने की हिम्मत नहीं पड़ेगी।'

'कोई चिन्ता नहीं। इश्क में सब कुछ सहना पड़ता है।'

तब तक किसी की आवाज कान में पड़ी, 'धीरज भाई को नमस्कार है।'

धीरज सिर घुमा कर देखने लगा। उसे पहिचानने में तनिक कठिनाई हो रही थी।

'बड़ी जल्दी भूल गये पंडित जी।' वह समीप आ गया।

'अरे! नरेश जी हैं। यहाँ कैसे? लन्दन से कब आये भाई। क्या नौकरी छोड़ दी?'

'नौकरी छोड़कर इस मुल्क में सड़ने आऊँगा। भगवान बचाये इस हिन्दुस्तान से। स्वर्ग और नरक की क्या तुलना? फर्म के काम से आया हूँ। परसों यहाँ आया था।'

'अब लौटना कब तक होगा?'

'लगभग दो-तीन महीने बाद। काम पूरा होने पर है। आप अच्छी तरह हैं?' इस बीच उसकी दृष्टि कई बार रंजना की ओर मुड़ चुकी थी।

रंजना भी इस छरहरे युवक को जो अंग्रेजी वेशभूषा से पूर्णतः सुसज्जित था—देख रही थी।

'वाह,' धीरज को जैसे स्मरण हो आया हो, 'परिचय तो कराया ही नहीं। ये हैं रंजना जी जो निकट भविष्य में रंजना पंडित कह कर…।'

नरेश ने मुसकराकर हाथ जोड़े, 'मुबारक हो। इग्लैंड जाने के पहले मेरी मिठाई मिल जायेगी न?' उसने रंजना से पूछा था।

रंजना ने भी हाथ जोड़ते हुये उत्तर दिया, 'उम्मीद पर दुनिया कायम है। आपको निराश होने की जरूरत नहीं। आप की मिठाई इग्लैंड भी जा सकती है।'

'थैंक्यू।' फिर वह धीरज की ओर देखता हुआ बोला—'आप तकदीर के बड़े धनी हैं धीरज भाई। जो काम किया ए-वन किया।' उसने पुनः रंजना की ओर सिर घुमाया, 'इस खुशी में कल शाम को मेरे यहाँ चाय पीने की तकलीफ कीजिये।'

'जरूर।' रंजना ने उत्तर दिया, 'मुझे कोई आपत्ति नहीं लेकिन धीरज बाबू को कल किसी मिटिंग में तो नहीं जाना है?'

धीरज ने आने की स्वीकृति दे दी। नरेश ने अपने कमरे का नम्बर बताकर विदाई ली। वह 'जनपथ' होटल में रुका हुआ था।

रास्ते में धीरज ने रंजना से बताया, 'दो वर्ष पूर्व नरेश यहीं सेक्रेटेरियट में एक साधारण क्लर्क था। संयोगवश किसी अंग्रेज यात्री से उसकी भेंट हो गई। वह नरेश से बड़ा प्रभावित हुआ और अपनी फर्म में नौकरी दे दी। तभी से नरेश इग्लैंड में रहने लगा है।'

'और इसकी फेमली?' रंजना ने पूछा।

'माता-पिता सभी हैं। सम्भवतः अभी विवाह नहीं किया है। वहीं इग्लैंड में किसी अंग्रेज महिला से करने वाला है। परिवार वालों से लगाव नहीं के बराबर है।'

'मैरिज हो जाने पर वह भी समाप्त हो जायेगा।'

'स्वाभाविक है। जब लन्दन में रहना है तो……।' धीरज कहते-

कहते रुक गया, 'अरे तुम खड़ी क्यों हो गई ?'

'अब आप कृपया आगे चलने का कष्ट न करें। मकान नजदीक आ गया है।'

धीरज हंसने लगा, 'बड़ी चतुर हो।'

'क्या करें ? चतुरों के गुरु का संग जो मिल गया है।' वह भी हंसने लगी। 'कल कब तक आना होगा ?'

'पाँच बजे तक।' वह मुड़ने को हुआ।

'नमस्ते।' रंजना ने आँखें मटकाईं।

'नमस्ते।' धीरज मुसकराता हुआ बढ़ गया।

× × ×

दूसरे दिन शाम को नरेश नें चाय पर दोनों की बड़ी खातिर की। फिर उसने अंग्रेजी पिक्चर देखने का प्रस्ताव रखा और बार-बार आग्रह भी किया। इनकार करना मुश्किल हो गया। तीनों पिक्चर देखने आये। रंजना नरेश से बड़ी प्रभावित हुई थी।

अब आये दिन कनॉट सरकस पर नरेश से भेंट होने लगी। कभी धीरज की ओर से चाय-नाशता और सिनेमा का कार्यक्रम बनता तो कभी नरेश की ओर से। पर अधिकतर नरेश ही बनाता और पैसे को पानी की भाँति बहाता। मित्रता में घनिष्टता आने लगी। फलस्वरूप निस्संकोचिता बढ़ना अनिवार्य था।

एक दिन संध्या को जब 'जनपथ' होटल में बैठे तीनों चाय पी रहे थे तो नरेश ने रंजना से कहा, 'जरा आप अपनी कलाई आगे तो बढ़ायें।'

'क्यों ?'

'बढ़ाईये तो बताऊँ।'

रंजना ने बढ़ा दिया। नरेश ने अपनी जेब से एक घड़ी निकाल कर उसकी कलाई पर बाँध दी, 'मैं कल बम्बई जा रहा हूँ। बहुत मुमकिन है उधर से इग्लेंड चला जाना पड़े। यह उपहार विवाह के अवसर पर देने को सोच रखा था।'

धीरज ने पूछा, 'पर इधर तो जाने की कोई बात थी नहीं ?'

'बिल्कुल नहीं थी मगर कल अचानक ऐसी सूचना आ गई। मैं नहीं.......'

रंजना घड़ी देखती हुई बीच में बोल पड़ी, 'वेरी ब्यूटीफुल नरेश बाबू। हाउ मच इट कॉस्टस् टू यु ?'

'बहुत कम।'

'फिर भी।'

'पाँच सौ के आस-पास समझिये।'

'तब तो सचमुच कम है।' रंजना हंसने लगी, 'कल कब बाम्बे जा रहे हैं ?'

'दिन में दस बजे प्लेन से।' तब तक कोई फोन आ गया। नरेश फोन उठा कर बातें करने लगा।

३५

दूसरे दिन नरेश को विदा करने धीरज और रंजना हवाई अड्डे पर गये। चलते समय रंजना ने पत्र व्यवहार के लिए भी कह दिया। हवाई जहाज चला गया। उसके कई दिन बाद तक धीरज और रंजना के बीच नरेश की चर्चा चलती रही।

चुनाव सिर पर आ गया। धीरज को अब आजमगढ़ किसी दिन भी चल देना था। किन्तु अभी वह आजकल-आजकल किये हुए था यद्यपि रंजना कई बार जाने को कह चुकी थी; अन्त में एक दिन उसे रंजना का मोह त्यागना पड़ा। उसने आजमगढ़ के लिए प्रस्थान किया। रंजना ने भी प्लेटफार्म पर गाड़ी छूटते समय आँखों पर रूमाल लगाकर वियोग

को व्यथा का परिचय दे दिया। गाड़ी सीटी देती हुई आगे बढ़ गई। रंजना प्लेटफार्म पर खड़ी तब तक रुमाल हिलाती रही जब तक धीरज आँखों से ओझल न हो गया।

अभी हफ्ता भी समाप्त नहीं हुआ होगा कि एक दिन अचानक कनॉट सरकस पर नरेश 'हेलो' करता हुआ रंजना के सामने आ खड़ा हुआ। रंजना देखती रह गई, 'आप लौट आये ?'

'इंग्लैंड से नहीं बाम्बे से। सम्भवत: अब मिठाईयाँ खाकर ही जाऊँगा ? कुछ नये कार्य ऐसे आ गये हैं जिनके लिए रुक जाना पड़ा है।'

'यहाँ कब आये ?'

'आज सवेरे। आप अच्छी तरह हैं। धीरज जी कहाँ……?'

'आजमगढ़ चले गये हैं। एलेक्शन……।'

'ओ हाँ। शायद अगले ही मन्थ में है।'

'हाँ।'

नरेश ने हँसी की, 'बड़े बेमौके एलेक्शन पड़ गया ?'

'क्यों ?' रंजना कुछ समझ न सकी।

'यह समय अलग-अलग रहने का थोड़े है। मैं समझता हूँ एक-एक सैकण्ड कटना मुश्किल……।'

रंजना मुसकराई, 'अनुभव पुराना मालूम पड़ता है ?'

'जी हाँ। हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं के उपन्यासों को पढ़ने का अवसर मिला है।'

रंजना हँसने लगी, 'अभी शादी नहीं की है ?'

'जी नहीं।'

'तभी यह हालत है। क्या अभी करने का इरादा भी नहीं है।'

'लड़की की तलाश में हूँ। कोई आप जैसी मिल जायेगी तो मैं भी गंगा नहा लूंगा।' वह मुसकराने लगा, 'आईये चलिये।'

'कहां ?'

'क्यों ? कहीं आप को जाना है ?'

'चाँदनी चौक जाने को सोच रही थी। कुछ सामान लेना था।'

'अगर मेरी कम्पनी सूट करे तो मैं भी चलूं ?'

रंजना ने उसकी ओर देखा, 'सूट तो नहीं करेगी लेकिन चले चलिये।' उसके पैर उठ गये।

नरेश ने आगे बढ़कर टैक्सी वाले को रोका। दोनों बैठ गये। 'चाँदनी चौक चलो।' नरेश ने कहा।

रास्ते में नरेश ने पूछा, 'एलेक्शन के बाद ही मैरिज की तैयारी है न ?'

रंजना ने सिर हिलाकर हाँ किया।

'फिर तो हनीमून के लिए अगर आप लोग मेरे साथ इग्लैंड चलें तो कैसा रहेगा ? यह इनविटेशन मेरी ओर से है।'

'आप भी तकल्लुफ करना खूब जानते हैं।'

'क्यों ?'

'हनीमून मनाने चलें हम लोग और इनविटेशन हो आप की ओर से ? कमाल है। आप को क्या मजा मिलेगा ?'

'आप की कम्पनी और अगर ऐसी कोई आवश्यकता अनुभव हुई तो मैं भी टेम्परेरी अरेन्जमेंन्ट कर लूंगा।'

रंजना सिर झुकाकर मुसकराने लगी।

'आप से,' नरेश के मुँह से निकला, 'एक बात पूछना भूल ही गया था। आप को इंगलिश डान्सेज में दिलचस्पी है ?'

'क्यों ?'

'लंदन की एक बड़ी मशहूर पार्टी आई हुई है। मेरे पास पासेज भी हैं। अगर चलने को कहें तो मैं आप को पिक अप कर लूं।'

'तबीयत तो है लेकिन कल एक जगह शाम को चाय पर जाना है। जहाँ तक मेरा अन्दाज़ है वहाँ से लौटते-लौटते साढ़े सात बज जायेंगे।'

'तो क्या हुआ ? साढ़े सात बजे से तो प्रोग्राम शुरू होगा। हम लोग आधे घंटे लेट पहुँचेंगे।'

'तब मैं चल सकती हूँ। लेकिन बजाय आपके आने के मैं आप के होटल आ जाऊँगी।'

'यह मेरे लिए सौभाग्य की बात होगी। जब तक आप नहीं आ जायेंगी, मैं जाऊँगा नहीं।'

'नहीं। आप सिर्फ आठ बजे तक वेट कीजियेगा।'

टैक्सी लालकिले वाले चौराहे से चाँदनी चौक की ओर मुड़ गई थी, 'गुरुद्वारे के पास,' रंजना बोली, 'रोक लेना ड्राइवर।'

गुरुद्वारे के पास टैक्सी रुक गई। नरेश ने पैसे दिए और रंजना के संग-संग चल पड़ा।

× × ×

किसी न किसी बहाने संध्या को घंटे दो घंटे के लिए रंजना और नरेश की भेंट होने लगी थी। हंसी-दिल्लगी बढ़ने लगी थी। फिर भी अभी सब सीमा के भीतर था। यद्यपि जब तब रंजना के हाव-भाव और वाक्यों के अर्थों की गूढ़ता नरेश को उलझन में डाल दिया करती थी। वह घंटों उन पर सोचा करता था। उनकी गहराई में बैठ कर वास्तविकता जानने का प्रयत्न किया करता था किन्तु अन्त तक किसी परिणाम पर नहीं पहुँच पाता था। कारण, रंजना धीरज की हो चुकी थी। थोड़े दिनों बाद उससे ब्याह करने जा रही थी। अतः ऐसी दशा में नरेश का यह अनुमान लगाना कि रंजना उसके प्रति भी आकर्षित है—महान मूर्खता का परिचय देना था न। नरेश अपने सन्देह को भ्रम कह कर बड़ी देर तक स्वयं अपनी खिल्ली उड़ाता और धिक्कारता रहता था। लेकिन चार-छः दिन भी नहीं व्यतीत होने पाते कि पुनः रंजना कोई ऐसा वाक्य कह देती कि उसके सामने फिर वही उलझन आ खड़ी होती। घंटों रात की नींद खराब जाती लेकिन नतीजा कुछ भी नहीं निकलता। कभी-कभी वह भी कुछ कहने को सोचता, किन्तु संध्या समय भेंट होने पर उसकी हिम्मत छूट जाती और प्रयत्न करने पर भी मुंह से वे वाक्य नहीं निकल पाते।

एक दिन मजाक के दौरान में रंजना ने पूछा—'अभी तक कोई लड़की निगाह में आई या नहीं ?'

'न आई है न आयेगी।'

'क्यों ?'

'लक की बात है। सभी धीरज पंडित की भांति भाग्यशाली नहीं हो सकते। अब तो सम्भवतः जीवन भर कुँवारा ही रह जाना पड़ेगा।'

'लड़कियों की बटरिंग करना आप लोग खूब जानते हैं। जिसके सामने हुये उसी को स्वर्ग की अप्सरा बना दिया। मेरी जैसी सैकड़ों लड़कियाँ दिल्ली में मिल जायेंगी नरेश बाबू।'

नरेश ने साँस खींची, 'क्या कहूँ रंजना जी, अगर लड़कियाँ मिलती होतीं तो यह रोना क्यों होता ? अब तो सारे रास्ते बन्द हो चुके हैं वरना उस समय अगर मैं दिल्ली में होता तो फिर धीरज पंडित बाजी न मार ले जाते।' नरेश के मुँह से वही बात निकल गई जिसे कहने में वह कई बार असमर्थ रहा था।

'अच्छा।' रंजना ने आँखें नचाई, 'तब तो मुझे आप से हमदर्दी है,' वह मुसकरा रही थी, 'अब कोई न कोई आपके लिए रास्ता निकालना ही पड़ेगा।' रंजना धाकड़ लड़कियों में थी।

'आप तो मुझे बेवकूफ बनाने लगीं। सच्ची बात......।'

'लीजिये। मैं रास्ता बताने लगी तो उसे आप मजाक समझने लगे। कल एक पत्र धीरज बाबू को आप लिख दीजिये कि रंजना ने अपना विचार बदल दिया है। अब उसने आपसे मैरिज न करके मुझ से करने का फैसला किया है। आप कोई दूसरी लड़की ढूँढने का कष्ट करें।'

नरेश हंसता हुआ बोला, 'अच्छा रास्ता बताया। अखबारों में जो न्यूज छपेगी सो अलग।'

रंजना ठट्ठा मार कर हंसने लगी। नरेश भी हंसता रहा। बात का सिलसिला बदला। दूसरी बातें होने लगीं।

× × ×

आजमगढ़ में चुनाव की सरगर्मी जोरों पर थी। सभी अपने-अपने प्रचार में जी-जान से जुटे हुये थे। एक-दूसरे की बुराई जहाँ तक कर सकते थे कर रहे थे। पुरखे तर रहे थे। कहीं-कहीं गाली गलौज और मारपीट तक की नौबत आ जाती थी। काँटे-बल्लम निकल आते थे। नाम प्रजातंत्र का और काम अप्रजातांत्रिक। भारतवर्ष की नैया किस घाट लगेगी इसे ईश्वर के अतिरिक्त दूसरा नहीं बता सकता।

धीरज की स्थिति कमजोर दिखलाई पड़ रही थी। वह अपने क्षेत्र में जहाँ भी गया मतदाताओं ने उसके मुँह पर उसकी बुराई की। किसी ने पूछा—पाँच साल तक कहाँ रहे, तो दूसरे ने कहा—रेशमी कुरता जो पहनने लगे हैं। अब आने की क्या जरूरत है? तीसरे ने उस पर मोहर लगाई—अरे भई हराम की कट रही तो रेशमी नहीं मारकीन पहनेंगे? उस दिन सुना नहीं हरनारायण सिंह क्या कह रहे थे? पंडित जी ने अपनी पहली स्त्री को घर से निकाल दिया है और अब कोई दिल्ली की छोकरी से ब्याह करने जा रहे हैं। धीरज सब सुनता और मौन हाथ जोड़ता हुआ आगे बढ़ जाता। कुछ कहने की गुंजाइश नहीं थी।

धीरज की निराशा बढ़ गई थी किन्तु उसके समर्थक उसी उत्साह से कार्य कर रहे थे। अनुभव के आधार पर उनका कहना था कि वातावरण के बदलने में बहुत समय नहीं लगता है। ऐन मौके पर पासा पलट सकता है। और हारा हुआ उम्मीदवार विजयी घोषित हो सकता है।

प्रचार चलता रहा। राजनीति के हथकंडे प्रयोग में आते रहे। हवा अचानक फैली, 'फिज़ा बदल गई, धीरज पंडित जीत रहे हैं। फिज़ा बदल गई, धीरज पंडित जीत रहे हैं। फिज़ा बदल गई धीरज पंडित जीत रहे हैं।' जिधर कोई जाता उससे यही सुनने में आता। लोगों को पासा पलटा हुआ दिखाई पड़ने लगा।

अब केवल दो दिन चुनाव के बाकी रह गये थे। चुनाव का दिन भी आ गया। मतदाताओं ने मत डाले। सब अपनी-अपनी कहने लगे। मत गणना की प्रतीक्षा होने लगी।

३६

रंजना के पास धीरज के पत्र आ रहे थे। आज भी एक पत्र आया था। उसने अपनी स्थिति अच्छी लिखी थी और जीतने की पूर्ण आशा व्यक्त की थी। लेकिन दैनिक पत्रों के अनुसार उसकी स्थिति डाँवाडोल थी। प्रतिद्वन्द्वी के जीतने की सम्भावना थी। रंजना कुछ सोचने लगी और बड़ी देर तक सोचती रही। उसके विचारों की श्रृङ्खला उस समय टूटी जब आया ने आकर नहाने के लिये कहा। वह 'अच्छा' कहती हुई पुनः विचारों में डूब गई। और अन्त में निष्कर्ष पर पहुँचने के उपरान्त ही उसका उठना हुआ।

संध्या समय नरेश से भेंट होने पर कुछ समय तक इधर-उधर की बातों के उपरान्त रंजना ने मुसकराते हुये पूछा, 'क्यों नरेश बाबू, आप ने आजमगढ़ पत्र लिख दिया?'

'कैसे लिखता? आप भी उस में सिगनेचर करने को तैयार हों तब तो?' नरेश भी मुसकराने लगा।

'आप ने कभी कहा?'

'अब तो कह रहा हूँ।'

'लाईये कर दूँ। कहाँ है?'

'अभी लीजिये।' उसने मुड़कर एक जाती हुई टैक्सी को हाथ दिया। टैक्सी रुक गई, 'आइये चलिये।' वह रंजना से बोला।

'कहाँ?'

'होटल। अभी मिन्टों में सब हुआ जाता है।' मजाक की ओट में हृदय की वास्तविकता को व्यक्त किया जा रहा था।

रंजना टैक्सी में बैठ गई। नरेश भी बैठ गया। 'जनपथ होटल।' उसने ड्राइवर को आदेश दिया।

टैक्सी चल पड़ी।

ऊपर कमरे में पहुँचते ही नरेश ने लेटरपैड निकाला और लिखने बैठ गया। रंजना ने उसके सामने से लेटरपैड खींच लिया—'आप तो बिल्कुल उतावले हो उठे।' वह बड़े प्यार भरे नेत्रों से नरेश को देख रही थी।

'यह काम ऐसा ही है। विचार बदलते देर नहीं लगती। अभी लोहा गर्म है……।'

रंजना के चेहरे पर तनिक गंभीरता आई, 'वास्तव में नरेश बाबू आप मुझसे मैरिज करना चाहते हैं ?'

'यह बात मुझे कहना चाहिये थी रंजना जी। मैं अपने को बड़ा भाग्यशाली समझूंगा अगर आप……।'

'असलियत यह है नरेश बाबू कि जैसी खबरें मिली हैं उसके अनुसार धीरज बाबू का इस बार जीतना असम्भव सा दिख रहा है। ऐसी हालत में मुझे भी अपने फ्यूचर पर सोच लेना जरूरी-सा हो गया है। पूरी जिन्दगी का सवाल है। धीरज बाबू राजनीतिक व्यक्ति हैं। आज बादशाह तो कल सड़क के भिखारी। मैंने बादशाह को पसन्द किया था सड़क के भिखारी को नहीं। इसलिए मैंने आपसे साफ शब्दों में पूछा है कि अगर आप……।'

नरेश अपनी कुरसी से उछल पड़ा। घंटी बजाई। बेयरा अन्दर आया। 'खाना।' उसने हुक्म दिया।

'जी हुजूर।' वह चला गया।

नरेश रंजना की कुरसी पर झुकता हुआ बोला—'श्रुड आई किस यू ?' वह प्रसन्नता में झूम रहा था।

'नो। आब्जेक्सनेबिल।' रंजना ने अपना हाथ आगे कर दिया।

नरेश ने उसकी हथेली को चूम लिया, 'आई थिंक, इट इज नाट आब्जेक्सनेबिल ?'

रंजना मुसकराने लगी, 'होपलेसमैन।'

नरेश ठट्ठा मार कर हंस उठा।

× × ×

मतगणना हो गई। धीरज हार गया। उसकी सारी आशाओं पर तुषारपात हो गया। वह कहीं का नहीं रहा। कई दिनों तक वह नाना प्रकार की चिन्ताओं में डूबा रहा फिर उसने दिल्ली की तैयारी की और एक दिन दिल्ली को चल पड़ा। रंजना से अलग हुये काफी दिन हो चुके थे। उसने चलने के पहले चिट्ठी डाल दी थी और आशा करता था कि रंजना उसे स्टेशन पर अवश्य मिलेगी पर वहाँ कोई नहीं था। उसे व्यथा पहुँची थी।

शाम के पाँच बजते-बजते धीरज रंजना के घर पर उपस्थित था। घण्टी बजाई। आया ने दरवाजा खोला और सिर हिला कर बोली, 'नहीं हैं।'

'कहाँ गईं ?'

'कुछ पता नहीं।'

'कब तक लौटेंगीं ?'

'कुछ बता कर नहीं गई हैं।'

'अकेले हैं ?'

'नहीं। नरेश बाबू भी साथ में हैं।'

धीरज का माथा ठनका 'मेरे आने की चिट्ठी मिली थी ?'

'जी हाँ। मिली थी।'

धीरज कुछ सोचता हुआ मुड़ पड़ा। वहाँ से सीधा जनपथ होटल पहुँचा। नरेश का कमरा बन्द था। वह कनॉट सरकस आया। कई बार चारों ओर चक्कर लगाये पर भेंट नहीं हुई। वह पुनः रंजना के घर पहुँचा। अभी तक वह नहीं आई थी। कुछ देर तक खड़े-खड़े सोचता रहा फिर जनपथ होटल गया और वहाँ से कनॉट सरकस आया। मुलाकात नहीं हुई। वह हताश मन नाना प्रकार के विचारों में डूबता-उतरता घर को चल पड़ा। सारी रात चिन्ताओं में खराब गई। चोट पर चोट लग रही थी। बुरे दिन जब आते हैं तो संग-संग आते हैं।

दूसरे दिन धीरज दस बजे ही रंजना के घर पर जा पहुँचा। दर-

वाजा खुलने पर उसी प्रकार आया ने सिर हिला कर कहा, 'नहीं हैं।'

'नहीं हैं?'

'जी नहीं। नरेश बाबू के संग सामान खरीदने गई हैं।'

धीरज के बदन में आग लग गई, 'नरेश बाबू रोज आते हैं क्या?'

'करीब, करीब।'

'लौटने के बारे में कुछ नहीं कहा है?'

'शायद रात तक लौटेंगी। सामान खरीदने के बाद वह नरेश बाबू के होटल चली जायेंगी।'

धीरज मिनट दो मिनट कुछ सोचता रहा। उसका हृदय फटा जा रहा था, 'मेरे आने की सूचना उन्हें है?'

'जी हाँ। मैंने कह दिया था।'

'फिर?'

'उन्होंने कुछ कहा नहीं था।'

'हूँ। खैर, कल मैं इसी समय फिर आऊँगा। उनसे कहना कि अगर हो सके तो दस मिनट के लिये मुझ से मिल लें।'

'अच्छी बात है।' आया ने दरवाजा बन्द कर लिया।

धीरज धीरे-धीरे उतरता हुआ अपनी मोटर में आकर बैठ गया। उसकी व्यथा अकथनीय थी। वह कुछ भी नहीं समझ पा रहा था। फिर भी उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि रंजना ने नरेश से किसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित कर लिया है। 'स्वारथ के चित्त रहें न चेतू, फिरि-फिरि देखें आपन हेतु' वाली उसकी स्थिति हो गई थी।

दूसरे दिन ठीक दस बजे रंजना के घर धीरज पहुँचा। दरवाजा खुला। आया अपने अधरों पर तनिक मुसकान बिखेरती हुई बोली, 'वह कल रात में बम्बई चली गई पंडित जी। वहीं नरेश बाबू के साथ उनकी शादी होगी और उसके बाद वह लन्दन चली जायेंगी। कल मैं भी बम्बई जा रही हूँ।'

धीरज मुँह फैलाये हक्का-बक्का-सा आया की ओर देखता रह

गया। मनुष्य का स्वभाव समझना कठिन है, अन्यथा सृष्टि के समझने में कितनी देर लगने का। धीरज न इधर का हुआ न उधर का। सभी कुछ छिन गया।

३७

जाड़े के दिन थे। बाजरे के लहलहाते खेतों के बीच मचान पर खड़ी रूनियाँ गुलेल चला-चला कर चिड़ियों को उड़ा रही थी। ऊपर आकाश में मेघों का जमाव घट-बढ़ रहा था जिसके कारण समय में बड़ा लुभावनापन आ गया था। रूनियाँ का सौंदर्य निखर आया था। वह बाँयी ओर गुलेल चलाकर दाहिनी ओर मुड़ी थी कि कानों में आवाज पड़ी। उसने सिर घुमा कर उधर को देखा। एक व्यक्ति कन्धे पर लाठी रखे और दाहिने हाथ की उंगली कान में लगाये बड़ी मस्ती में गाता चला जा रहा था। रूनियाँ ध्यान से सुनने लगी। वह गा रहा था—

नीर भर आये बदरा सईयाँ नाही आये रे।
प्रीति का सन्देशा दे कर बड़ा तड़पाये रे॥

काहे तू रूठे सजना मैं नाही जानू,
छल नाही जानू कपट नाही मानू,
अरज है थोरी कसुरवा बताये रे।
प्रीति का सन्देसा दे कर बड़ा तड़पाये रे॥

गिरे फुहार झिम-झिम छाई बदरिया,
कोइली पुकारे पी-पी आजा संवरिया,
बरखा की रात बालम जियरा दुखाये रे।
प्रीति का सन्देसा दे कर बड़ा तड़पाये रे॥

....
....

रूनियाँ मुसकराती हुई मन ही मन कह उठी, 'अच्छा हुआ जो सईयाँ नहीं आये बौड़म दास वरना मेरी जैसी हालत तुम्हारी भी हो गई होती।'

०००